R.N.I. No. 2321/57
दिसम्बर 2015

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15
अंक 11

तपोभूमि

मासिक

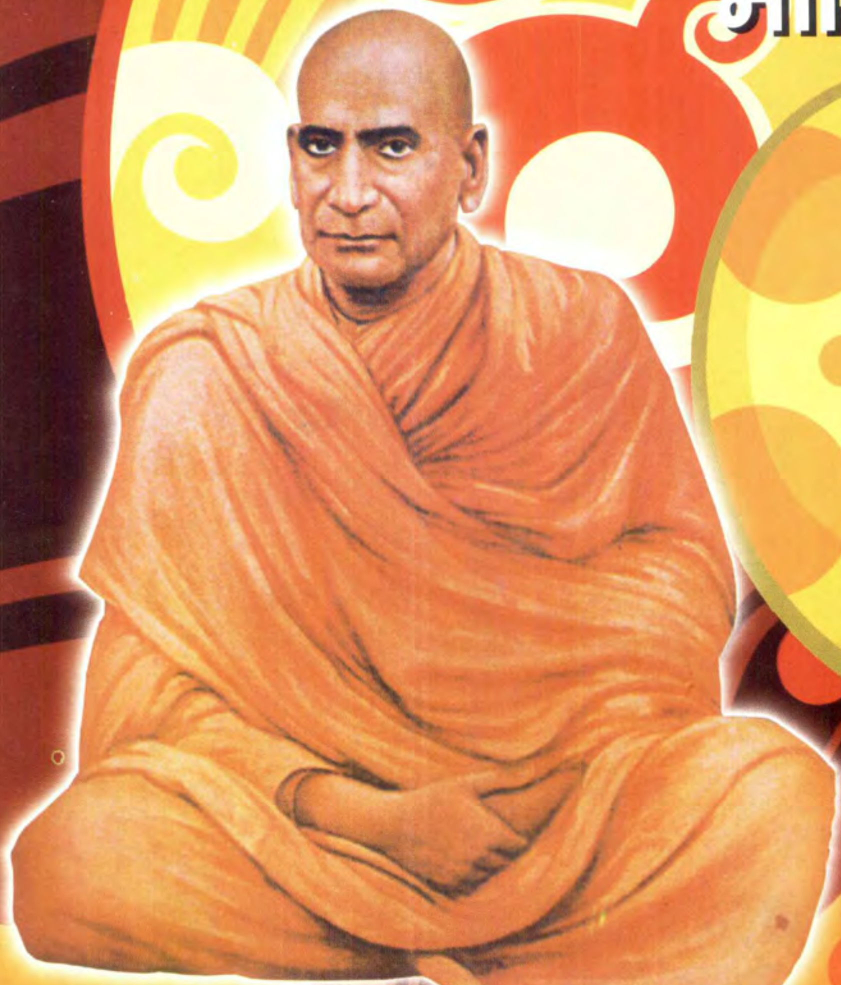

अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती

(1856-1926)

23 दिसम्बर बलिदान दिवस

श्रद्धा ही तरन तारन है

–स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज

(आर्यसमाज के क्षेत्र में स्वामी श्रद्धानन्द का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती महाराज के जादुई व्यक्तित्व से प्रेरणा लेकर साधारण व्यक्तित्व वाले मुंशीराम असाधारण व्यक्तित्व के धनी केवल अपनी सत्य प्रति अटूट श्रद्धा के कारण बने। जिन सिद्धान्तों को उन्होंने समझा उनको अपने जीवन में आत्मसात वे अपनी अपूर्ण श्रद्धा के कारण ही सके और श्रद्धानन्द बनकर भारतीय आकाश में नक्षत्र की तरह जगमगाये। उनके बलिदान दिवस पर सबकी प्रेरणा के लिए उन्हीं का लेख प्रस्तुत करते हैं।)

ओ३म्

कस्त्वामिन्द्रत्वा बसवा मर्त्यो दधर्षति।
श्रद्धा ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति।।

हे सबके निवास स्थान सबके स्वामी परमात्मन्! उसको कौन मरण धर्म (मनुष्य) ग्रहण कर सकता है? हे सर्वपूज्य! तेरा ज्ञानी ही पुरुष ही (ऊपर उठकर) द्युलोक में श्रद्धा द्वारा ज्ञान में जीवन डालता है।

यह और वह दोनों का ही मेल नैतिक जीवन में अनुभव होता है। संसार को स्वप्नवत् समझने वाले मनमाने ब्रह्मज्ञानी को भी शारीरिक तथा मानसिक क्लेश झटका देकर जगा देते हैं। तब पता चलता है कि यह और है और वह और। यह शरीर परिवर्तनशील, नाशवान और वह एक रस अनादि, अनन्त। आकाश और पाताल का अन्तर है। परन्तु वह इन आँखों से दिखाई नहीं देता, इन कामों से सुनाई नहीं देता। इन इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं है और ग्राह्य हो भी नहीं सकता? जो इन्द्रियों का विषय न हो। जो मन के वश में आने वाला हो जो बुद्धि से भी परे हो, जो सूक्ष्म वस्तुओं से भी सूक्ष्म हो। उसे कौन मरणधर्मा प्राणी अपनी सीमित बुद्धि में बाँध सकता है।

तब विनाश, तपहीन, गिरा हुआ मनुष्य और भी नीचे गिर जाता है। एक ओर अपनी निर्बलताओं का ज्ञान और दूसरी ओर आश्रय का अभाव देखकर उसे चारों ओर अन्धकार प्रतीत होता है। हाय प्रकाश! हाय प्रकाश! यह आर्त्तनाद आकाश में गूंजने लगता है।

यह भयानक अवस्था संसार को डाँवाडोल कर देती है एक का विलाप सैकड़ों की शान्ति का नाश करने के लिए पर्याप्त है। तो क्या करोड़ों का मानसिक रोना पशु–पक्षी तथा वनस्पति तक को न दहलाता होगा।

–(शेष पृष्ठ सं0 35 पर)

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–61 संवत्सर 2072 दिसम्बर 2015 अंक 11

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

दिसम्बर 2015

सृष्टि संवत्
1960853116

दयानन्दाब्द: 192

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाष:
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेधाव्रत	5–8
यह भी जानिये	–रामेन्द्रकुमार आर्य	9–12
पुराणों को किसने बनाया	–डॉ0 श्रीराम आर्य	13–16
उपोद्घात	–टी.एल.वासवानी	17–20
ब्रह्मचर्य	–पण्डित सत्यव्रत	21–24
मनुष्य का मनुष्यत्व	–बाबू सूरजभान वकील	25–28
आर्यवीरो ! उठो		29–31
ब्रह्मचर्य–विज्ञान	–जगननारायण देव	32–34

❁❁❁

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

डॉ0 रामनाथ वेदालंकार

सांमनस्य

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि।।

–अथर्व0 3.30.5

शब्दार्थः–

हे मानवो! (ज्यायस्वन्तः) अपने से बड़ों को बड़ा मानते हुए, (चित्तिनः) ज्ञान संग्रह करते हुए, (संराधयन्तः) मिलकर कार्यसिद्धि करते हुए, (सधुराः चरन्तः) एक धुरे में जुतकर चलते हुए, अर्थात् समान लक्ष्य की पूर्ति का प्रयास करते हुए (अन्यो अन्यस्मै) एक–दूसरे के प्रति (वल्गु वदन्तः) मधुर भाषण करते हुए (एत) चलो, अग्रसर होवो। (वः) तुमको (सध्रीचीनान्) साथ मिलकर चलनेवाले, तथा (संमनसः) समान मनवाले (कृणोमि) करता हूँ।

भावार्थः–

हे मानवो! तुम 'अपनी–अपनी ढपली, अपना–अपना राग' की कहावत चरितार्थ क्यों कर रहे हो? तुम सब एक जगत्स्रष्टा के पुत्र–पुत्रियाँ हो। तुम्हें चाहिए तो यह कि परस्पर विचार–विनियम करके एक लक्ष्य निर्धारित करो, उसकी सफलता के उपाय सोचो, और उन उपायों के क्रियान्वयन में लग जाओ। कभी सफलता न भी मिले, तो मिलकर सोचो कि हमारे कार्य में क्या कमी या त्रुटि रह गयी है। उन त्रुटि के निवारणपूर्वक पुनः उद्योग करो, सबको साथ लेकर उद्योग करो, तो सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी। आवश्यकता इस बात की है कि तुम्हारा प्रारब्ध कार्य बुजुर्ग लोगों से अनुमोदित होना चाहिए, उनके सुदीर्घ अनुभव की पुट उसमें मिली होनी चाहिए, कर्तव्य कार्य का निश्चय ज्ञान की भट्टी में परिपक्व हो चुका होना चाहिए। ऐसे कार्य को तुम प्रारम्भ कर दो, मेल–मिलाप से कार्य को करते हुए परस्पर मधुर भाषण करो, एक–दूसरे पर ताने न कसो, व्यङ्ग्य–बाण मत छोड़ो, अन्यथा तुम्हारे अनेक साथी तुमसे अलग हो सकते हैं। याद रखो, कार्यसमाप्तिपर्यन्त परस्पर मिले रहना है, जुड़े रहना है, तभी कार्य सिद्ध होगा, सामूहिक कार्य दो–चार के बस के नहीं होते हैं। सब नरपुंगम अहर्निश कार्य पूर्ण करने की चिन्ता करते हैं, तभी कार्य अपना रंग लाता है।

आओ, मैं तुम्हें साथ मिलकर कार्य करनेवाला बनाता हूँ, तुम्हारे अन्दर ऐसी रंगत भरता हूँ कि तुम एक–दूसरे से पृथक् होने का नाम ही न लो, परस्पर एक होकर ही निर्धारित कर्म को करने में गौरव अनुभव करो। मैं तुम्हें 'संमनाः' करता हूँ, तुम्हारे मनों को मिलाता हूँ, तुम्हारे मनों को संस्कृत करता हूँ। तुम्हारे मनों को इस योग्य करता हूँ कि तुम विचार–विनिमय करके एक–जैसी हितकारी बात को सोच सको।

आओ, मैं तुम्हें सांमनस्य के सूत्र में पिरोता हूँ। ❁❁❁

गतांक से आगे–

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखकः आचार्य मेधाव्रत

द्वादशः सर्गः

अथ यातो यतिराजः स हरिद्वारसुतीर्थम्।
भवति द्वादशवर्षे विपुलं कुम्भवितानम्।। 78।।

फिर यतिराज प्रसिद्ध–हरिद्वार तीर्थ गये, जहाँ प्रति 12 वें वर्ष महान् कुंभ–मेला लगा करता है॥ 78॥

सन्तो महान्त आगताः संन्यासिनस्तपस्विनः।
वैराग्यवन्त एकतो मायाभृतोऽपि चान्यतः।। 79।।

इस मेले में एक ओर त्यागी, तपस्वी, ज्ञानी संत महात्मा आते हैं, जब दूसरी ओर माया में फँसे दंभी महन्त भी आते हैं॥ 79॥

'विष्णोः पदकंजं भज गंगाम्बुनि पापं क्षिणु।
मूर्त्तिं नम मुक्तिं व्रज' यत्र ध्वनिरश्रूयत।। 80।।

यहाँ चारों ओर से ये शब्द सुनाई पड़ रहे थे कि–आओ विष्णु के चरण कमल का सेवन करो, पवित्र गंगा में स्नान करके पाप धो डालो, मूर्त्ति को प्रणाम करो और मुक्ति पा लो॥ 80॥

शुक्लसुचैलवितानं भूपतिसाधुवराणाम्।
देवनदीमभितोऽलं मंजुलकान्तिमतानीत्।। 81।।

उस समय हरिद्वार में संपत्तिशाली महन्तों एवं राजाओं के श्वेतवस्त्र के विशाल तम्बू गंगा के दोनों किनारों पर मंजुल शोभा फैला रहे थे॥ 81॥

नृपशिल्पिभगीरथकीर्त्तिकेतनभा गिरिराजभवा या।
विमलाम्बुमयी मुनिसेव्या वेगवती वहति प्रबलोर्मिः।। 82।।

जहाँ हिमालय से उत्पन्न हुई अपने समय के महान् शिल्पकार राजा भगीरथ की कीर्त्तिपताका तुल्य, पवित्र जलवाली, मुनिजनों से सेवित, प्रबल तरंगयुक्त गंगा वेग से बह रही थीं॥ 82॥

यद्यपि शीघ्रतया हिमशैलादवतरति प्रबलाम्बुतरंगा।
पुण्यहरिस्थलपार्श्वगगंगा श्रयति गतिं मृदुलद्रुतमध्याम्।। 83।।

यद्यपि गंगा हिमालय से प्रबल तरंगों से युक्त, उछलती कूदती नीचे उतरती है, तो भी पवित्र

हरिद्वार के पास इसकी मध्यगति हो जाती है॥ 83॥

उपचित्रककाननसुन्दरे कोकिलकूजनमंजुरसाले।
हिमशैलपदान्तिकपत्तने पर्णकुटीनिकुरम्बमराजन्॥ 84॥

अनेक प्रकार के जंगलों से रमणीय , कोयलों के कूजन से मंजुल आम्रवाटिकाओं से शोभित, हिमशैल की उपत्यका में स्थित हरिद्वार में उस समय असंख्य झोंपड़ियां विराज रही थीं॥ 84॥

आर्यावर्त्ते विस्मयकारी विविधमतवादिसाधूनाम्।
कुम्भोत्सवविधिरनुपम इह भवति हरिपुरतीर्थान्ते॥ 85॥

समस्त आर्यावर्त्त में, हरिद्वार के पुण्य तीर्थ में, कुम्भ के प्रसंग पर विविध मत संप्रदाय के संत महन्तों की अनुपम उत्सव-विधि होती है॥ 85॥

समग्रप्रान्तानां विविधनगरेभ्यो वृषधियोजटीन्द्रा मुण्डीशा विहितयतिवेशा अपि परे।
क्षितीशा राजन्या विमलहृदया योगिन इतोगिरेर्गां मुक्त्वाऽऽयुः प्रकृतिललितां तां शिखरिणीम्॥ 86॥

उन दिनों हरिद्वार में समग्र प्रान्तों के विविध नगरों से धार्मिक और मूर्ख, जटाधारी, मुण्डी संन्यासी, राजा और पवित्र हृदयशाली योगिगण भी हिमालय की स्वाभाविक सुन्दर चोटियाँ छोड़कर आ जाते हैं॥ 86॥

पुण्यारण्यानी कुसुमितलतावेल्लितान्ता समन्ताद्वासन्ती लक्ष्मी र्गिरिपरिसरे संततानात्मलीलाम्।
सप्तस्रोतोंऽके प्रवरवरणाः पर्णशाला दशास्यां मुक्तात्मा योगी जनहितमनाः कारयित्वा न्यवात्सीत्॥ 87॥

हिमालय की तलेटी में महान् जंगल पुष्पलताओं से लदा पड़ा था। बसन्त-शोभा चारों ओर अपनी लीला फैला रही थी। वहीं सप्तस्रोत के पास जनकल्याणकारी मुक्तात्मा योगी दयानन्द बहुत बड़े घेरे में 10 कुटियाँ बनवा कर रहने लगे॥ 87॥

जनानां बोधाय श्रुतिमतधरस्तत्र पाखण्डजिष्णुर्नदीष्णः शास्त्रार्थे ध्वजममलधीर्धूर्त्तपाखण्डखण्डि।
न्यखानीत्संन्यासी द्विजयतिगणैः सेवितः संवसभिर्द्यदालोक्याश्चर्यप्रथनचतुरं प्रेक्षका विस्मिताक्षाः॥ 88॥

वैदिक सिद्धान्तों के आचार्य, पाखण्ड विजेता, पवित्रमति, शास्त्रार्थधुरन्धर संन्यासी दयानन्द ने लोगों में जानकारी के लिये अपने घेरे में पाखण्डखण्डनी पताका फहराई, कतिपय ब्राह्मण और संन्यासी इनकी सेवा शुश्रुषा के लिये एवं उपदेश श्रवण के लिये इनकी ही कुटियाओं में आकर रहने लगे। फहराती हुई उस पाखण्डखण्डनी ध्वजा को देखकर लोग आश्चर्य-चकित हो जाते थे॥ 88॥

मुनिवक्त्रेन्दुबिम्बोत्थ-निगमोक्तामृतं भद्रम्।
संपपु नृचकोरास्ते ह्यनुष्टुब्धदुशस्तथ्यम्॥ 89॥

मुनि के मुखचन्द्रमण्डल से निकले हुए सत्य एवं कल्याणकारी वेदामृत को स्थिरनेत्र होकर मनुष्यरूपी चकोर पीने लगे॥ 89॥

वेदोक्तानुगुणं तस्य भाषणं शृण्वतां खलु।
श्रुतिपथ्याजुषां नष्टा नृणां मृत्युभदवामयाः॥ 90॥

स्वामीजी के वेदानुकूल भाषण को सुननेवाले, वेदवाक्यरूपी हरीत की (हरड़) को सेवन करते हुए श्रोताओं की मानों मृत्युजन्य व्याधियां नष्ट हो गईं॥ 90॥

पुराणलीला विपुला मनोज्ञावल्लरीव सा।
तर्कैः कुठारै र्व्रतिना च्छिन्नमूला व्यधायृयहो॥ 91॥

व्रतधारी संन्यासी ने तर्क की कुल्हाड़ी से विपुल पुराणों की लीलारूपी ललितलताओं को मानों जड़ मूल से काट दिया॥ 91॥

साम्प्रदायकिधर्मभृद्धान्यां धृतिमतां वरः।
मूर्त्यर्चनविखण्डनं चकाराम्नायतत्त्ववित्॥ 92॥

वेदसिद्धान्तवेत्ता, धृतिमान् स्वामीजी ने साम्प्रदायिक धर्मों की राजधानी में जोर शोर से मूर्तिपूजा का खण्डन किया॥ 92॥

व्यापकाजेश्वरवपुर्धारणं वेदतर्काभ्याम्।
खण्डितं तेन चपला रुषिताः पूजकास्ततः॥ 93॥

इन्होंने वेदों के प्रमाणों तथा तर्कों से व्यापक, अजन्मा परमेश्वर के अवतारवाद का खण्डन किया, इसलिये धूर्तपुजारी क्रुद्ध हो गये॥ 93॥

मुखे मुखे मूर्त्तिजुषां मन्दिरे मन्दिरे हरेः।
मूर्त्तिपूजानिषेद्धुस्सा चर्चाजनि मुनीशितुः॥ 94॥

उन दिनों प्रत्येक मन्दिर में तथा प्रत्येक मनुष्य के मुख पर मूर्त्तिपूजा के खण्डन करने वाले इन मुनीश्वर की ही चर्चा थी॥ 94॥

संन्यासिविबुधं द्रष्टुं श्रोतुमस्याद्भुतां गिरम्।
प्रच्छन्नरूपा विबुधा आययु र्यतिसंसदि॥ 95॥

इन विद्वान् संन्यासी के दर्शनार्थ तथा इनकी अद्‌भुत वाणी को सुनने के लिये विद्वान् लोग छिपकर इनकी सभा में आया करते थे॥ 95॥

जडार्चनां विष्णुजनिं मृतश्राद्धकृतिं यतेः।
श्रुत्वाननाच्चित्रदशः प्रैक्षन्तैव निराकृताम्॥ 96॥

स्वामीजी के मुख से खण्डन की जाती हुई जड़-पूजा, ईश्वर की उत्पत्ति तथा मृतक श्राद्ध क्रिया को सुनकर बड़े-बड़े विद्वान् स्वामीजी की ओर आश्चर्यमय दृष्टि से देखते ही रह जाते थे॥ 96॥

तीर्थाप्लवं कण्ठमालां विचित्रतिलकक्रियाम्।
माहात्म्यमीशस्य नाम्नां मुनिराट् स निराकरोत्॥ 97॥

मुनिराज ने तीर्थस्थान, कण्ठी, विविध तिलक तथा नामामाहात्म्य की खूब धज्जियाँ उड़ाई॥ 97॥

विपक्षिणां ज्ञानचक्षुः साधूनामुन्मिमेष तत्।
येषां भक्ता अभूवन्नु ते तु संयमिभूपतेः॥ 98॥

स्वामीजी के उपदेशों से विपक्षी सत्पुरुषों के ज्ञाननेत्र खुल गये और इन संयमी सार्वभौम के सब महान् भक्त बन गये॥ 98॥

स्वामिनं नास्तिकं केचित्प्रोच्य स्वान् यजमाननृन्।
शमिताशंकानकार्षुरल्पबुद्धियुतान् बुधाः॥ 99॥

कितने ही पण्डे और पुजारी अपने अल्पबुद्धि वाले यजमानों को 'स्वामीजी नास्तिक हैं,' ऐसा कहकर उनकी शंकाओं का समाधान किया करते थे॥ 99॥

निन्दागिरं जगुरमी व्रतिराजो विरोधतः।
भाषणं संविदधिरे विज्ञंमन्यजनाः क्रुधा॥ 100॥

कतिपय पण्डितमन्य पौराणिक इस ब्रह्मचारी सम्राट् के विरोध में निन्दा करने लगे और अपनी सभाओं में भाषण देने लगे॥ 100॥

सुदम्भखण्डनवचोधराकम्प इयान् बली।
सुरावलीगिरिततिः कम्पमाप मुहुर्मुहुः॥ 101॥

स्वामीजी ने पाखण्ड और दंभ के खण्डन का ऐसा बलवान् भूकम्प पैदा कर दिया कि मानों मन्दिर मठ के देवी देवतारूपी गिरिमाला बारम्बार काँप उठी॥ 101॥

विशुद्धानन्दविबुधः काशीख्यातस्तदा यतिः।
जन्मवर्णपरं मन्त्रं प्रस्तुत्यार्थमिमं व्यधात्॥ 102॥

काशी के ख्यातनामा स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती स्वामीजी की सभा में आकर, जन्ममूलक वर्णपरक 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्' मंत्र को प्रस्तुत करके निम्नलिखित अर्थ करने लगे॥ 102॥

वदनादभवन् विप्रा बाहुभ्यां क्षत्रिया विधेः।
ऊरुभ्यामर्यनिवहा अंघ्रितो वृषला इमे॥ 103॥

ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जाँघों से वैश्य और चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए॥ 103॥

तुण्डान्निष्ठ्यूतिर्जायते जगाद यतिराडमुम्।
अर्थोऽयमयुक्तो यतः श्रुतेर्भवदुदीरितः॥ 104॥

स्वामीजी ने कहा कि–आपने इस मंत्र का जो अर्थ किया है वह असंगत है, मुख से तो थूक पैदा होता है॥ 104॥

विप्रास्समाजे वक्त्रवत् सद्‌गुणैस्समलंकृताः।
विराजो बाहुतुल्या हि शौर्यौदार्यविभूषिताः॥ 105॥

सचमुच तो इस मंत्र का अर्थ यह है कि समाज में विद्या और गुणों से अलंकृत होने के कारण ब्राह्मण मुखतुल्य हैं। शौर्य औदार्य आदि गुणों से विभूषित होने के कारण क्षत्रिय भुजातुल्य हैं॥ 105॥

ऊरुजाः कृषिवाणिज्यैस्तुन्दवत्पालका विशाम्।
वर्णत्रयसेवारत–वृषला अंघ्रिसन्निभाः॥ 106॥

कृषि और वाणिज्य द्वारा प्रजापालक होने के कारण वैश्य उदरवत् हैं तथा तीनों वर्णों की सेवा में तल्लीन होने से शूद्र चरण की तरह हैं॥ 106॥ –(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

यह भी जानिये

संकलनकर्त्ता:– रामेन्द्रकुमार आर्य

(59) वेदों की ओर लौटो–महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है–बालगंगाधर तिलक, मैं ब्रिटिस सरकार का पतन चाहता हूँ–पं0 रामप्रसाद बिस्मिल, सरफरोसी की तमन्ना अब हमारे दिल में है–पं0 रामप्रसाद बिस्मिल, भारतवर्ष को तलवार के बल पर जीता गया था और तलवार के बल पर ही उसे ब्रिटानी कब्जे में रखा जायेगा–लार्ड एल्गिन, सारे ज़हां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा–इकबाल, वन्दे मातरम–बंकिमचन्द्र चटर्जी, करो या मरो–महात्मा गांधी, हे राम–महात्मा गांधी, जन गण मन अधिकनायक जय हे–रवीन्द्रनाथ टैगोर, इन्कलाब जिन्दाबाद–भगतसिंह, जयहिन्द–सुभाषचन्द बोस, दिल्ली चलो–सुभाषचन्द बोस, पूर्ण स्वराज्य–जवाहरलाल नेहरू, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान–भारतेन्दु हरिश्चन्द, तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा–सुभाषचन्द बोस, आराम हराम है–जवाहरलाल नेहरू, भारत छोड़ो–महात्मा गांधी, विजयी विश्व तिरंगा प्यारा–श्यामलाल गुप्त, अंग्रेजी साम्राज्य का नाश हो–विष्णु गोपाल पिंगले, भारत का विस्मार्क लौह पुरुष सरदार पटेल–उत्पादन बढ़ाओ खर्च घटाओ अपव्यय बिल्कुल न करो आदि महापुरुषों के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन सम्बन्धी प्रमुख वचन व नारे रहे थे।

(60) महर्षि दयानन्द सरस्वती का सत्यार्थ प्रकाश, लाला लाजपत राय की अनहैप्पी इण्डिया, डॉ0राजेन्द्र प्रसाद की इन्डिया डिवाइडेड, डॉ0 पट्टाभिरमैय्या का कांग्रेस का इतिहास, लोकमान्य तिलक की गीता रहस्य, बंकिमचन्द्र चटर्जी का आनन्द मठ, भारतेंन्दु हरिश्चन्द की भारत दुर्दशा, द्विजेन्द्रनाथ टैगोर की भारती, मैथिलीशरण गुप्त की भारत भारती, केशवचन्द सेन की वामबोधिनी,ईश्वरचन्द विद्यासागर का सोमप्रकाश, महात्मा गांधी का –हिन्दू स्वराज्य, मुंशी प्रेमचन्द का खोज ए वतन, सुभाषचन्द बोस का इण्डियन स्ट्रगल, सुन्दरलाल का–भारत में अंग्रेजी राज्य, वीर सावरकर का–इन्डियन इन्डेपेन्डेंस आदि पुस्तकें स्वतन्त्रता आन्दोलन से सम्बन्धित हैं।

(61) प्राय: हिन्दू जनमानस में भ्रान्ति फैली हुई हैं कि अविवाहित की मृत्यु पर उसे जलाना नहीं चाहिए गाड़ना चाहिए। साधु जलाये नहीं गाड़े जाते हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि शव को गाड़ना या जल प्रवाह करना पाप कर्म होता है गाड़ने की प्रथा तब प्रचलन में आई जब बाल मृत्यु दर ज्यादा हुई या कोई साधु की मृत्यु कहीं बाहर हुई तो उचित सामग्री लकड़ी आदि सामान उपलब्ध नहीं हो सका। धन की कमजोरी की परिस्थिति में जमीन में दबा दिया यदि सम्भव हो तो हर हालत में मृतक को उचित मात्रा में सुगन्धित द्रव्य हवन सामग्री, गिरीं, छुहारा, मखाना, रार, चीनी,

चावल, सरसों, जौ, कपूर व घी डालकर बस्ती के दक्षिण दिशा में अन्त्येष्टि कर्म करने से पुण्य लाभ मिलता है और वायु नहीं बिगड़ती।

(62) जहां पर मांस पकाया जाता मछली पकाई जाती व अंडा पकाया जाता है वहां की वायु खराब हो जाती है। जहां पर दूध पकाया जाता है, दूध से खोवा बनाया जाता है और दूध से दही बनाया जाता है दही से मक्खन बनाया जाता है और फिर मक्खन से घी बनाया जाता है। वहां की वायु शुद्ध हो जाती है।

(63) विवाह शब्द का विलोम शब्द नहीं होता Marraige का विलोम Diverse तथा निकाह का विलोम तलाक होता है। भारतीय संस्कृति में विवाह आजीवन न टूटने वाला साझा होता है।

(64) चीनी यात्री फाह्यान भारत में 400 ई0 में आया था जब वह अपने देश वापस गया तो उसने कहा कि आर्यावर्त में कोई मूर्ति नहीं पूजता घर में किसी के ताले नहीं लगते तथा ताला की कोई संस्कृत भी नहीं होती तथा मुझे जब भी प्यास लगी तो मैंने वहां पानी मांगा तो मुझे पानी नहीं मिला पीने के लिए दूध और फल का रस मिला। उसने 6 वर्ष तक काबुल, मथुरा, राजस्थान, पटना, काशी, कौशाम्बी का भ्रमण किया। जब व्हेन सांग सन् 600 ई0 में भारत आया तो उसने भारत में जैनियों द्वारा मूर्तिपूजा करते हुए देखी व हिन्दू मन्दिर मिले। अतः मूर्तिपूजा सन् 400 के बाद आरम्भ हुई। आज लगभग अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बंग्लादेश व भारत में जो 50 करोड़ मुसलमान हैं ये सब मूर्तिपूजा की ही देन हैं।

(65) अमेरिका के राष्ट्रपति लिंकन और कैनेडी की हत्या नागरिक अधिकारों के प्रश्न को लेकर पीछे से शुक्रवार को सिर में गोली मारी गई, दोनों की पत्नियां उनके साथ थीं। हत्यारों की हत्या मुकदमा चलने के पूर्व ही कर दी गई। लिंकन सन् 1860 ई0 में व कैनेडी 1960 में चुने गये थे। लिंकन का हत्यारा जान बूथ थियेटर में गोली मारकर गोदाम में घुसा। दूसरा हत्यारा गोदाम से थियेटर में घुसा, लिंकन के सेक्रेटरी का नाम कैनेडी। कैनेडी के सेक्रेटरी का नाम लिंकन था। दोनों में अंग्रेजी के 3 अक्षर व हिन्दी के 7 अक्षर हैं। दोनों राष्ट्रपतियों के उत्तराधिकारियों का नाम जानसन था और दक्षिण के डेमोकेट थे। एक का जन्म 1808 में व दूसरे का जन्म 1908 में हुआ। दोनों राष्ट्रपतियों के बच्चों की मृत्यु हवाइट हाउस में हुई 15 तथ्य मिलते हैं।

(66) कठोपनिषद् कार ऋषि कथनानुसार जो धीर पुरुष जीवात्मा में स्थित परमात्मा के दर्शन करते हैं उन्हें चिरकाल तक सुख प्राप्त होता है। औरों को नहीं अर्थात् कल्पित कागज पर बनी मूर्तियों व पत्थर की मूर्तियों को ईश्वर के स्थान पर पूजना पाप व अधर्म है तथा शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जो एक ईश्वर को छोड़कर अन्यों की उपासना करता है। वह विद्वानों की दृष्टि में पशु हैं। लेकिन इन तथ्यों को अन्य सात न करके यानी ईश्वरीय सत्ता की भक्ति व योगाभ्यास, पंचमहायज्ञ आदि को छोड़कर कृत्रिम विद्वानों अर्थात् सर्वव्यापी को एकदेशी मन्दिर में धर्म गुरुओं द्वारा स्वकल्पित

भगवन्ननिवास व्यावसायिक दुकानें मानकर अन्धश्रद्धावश भक्त-गण अकाल मृत्यु का शिकार होते हैं। जैसे 27.08.2003 महाराष्ट्र के नासिक कुम्भ में भगदड़ से 29 तीर्थ यात्री मरे। जनवरी 2005 में महाराष्ट्र माधरा देवी मन्दिर भगदड़ में 340 श्रद्धालु मरे। अक्टूबर 2007 पावागढ़ गुजरात मन्दिर में 11 लोग मरे। 2008 में आ.प्र. विजयवाड़ा दुर्गा मन्दिर में 5 लोग मरे। दिसम्बर 2009 में राजकोट गुजरात धार्मिक कार्यक्रम में भगदड़ से 8 महिलाएं मरीं। सन् 2008 (उ.प्र.) के प्रतापगढ़ के मनगढ़ कृपालु आश्रम में भगदड़ में 65 लोग मरे। सन् 2011 में केरल शबरी माला मन्दिर में भगदड़ से 102 लोग मरे व हरिद्वार (उत्तरांचल) गायत्री परिवार में 22 लोग मरे। सन् 2012 देवदार झारखण्ड भगदड़ में 9 लोग मरे। सन् 2013 में प्रयाग (उ0 प्र0) कुम्भ में भगदड़ 36 लोग मरे हैं।

(67) ईश्वर इतनी ऊँचाई न देना कि प्रभु की धरती पराई लगने लगे। इतनी खुशियां भी न देना कि दु:ख पर किसी को हंसी आने लगे। नहीं चाहिए ऐसी शक्ति जिसका निर्बल पर प्रयोग करूँ। नहीं चाहिए ऐसा भाव कि किसी को देख जल-2 मरूँ। ऐसा ज्ञान मुझे न देना, अभिमान जिसका होने लगे। ऐसी चतुराई भी न देना जो लोगों को छलने लगे।

(68) मनुष्य कितना मूर्ख है प्रार्थना करते समय समझता है कि भगवान सब सुन रहे हैं पर निन्दा करते हुए ये भूल जाता है। पुण्य करते समय यह समझता है कि भगवान देख रहा है पर पाप करते समय भूल जाता है। दान करते हुए यह समझता है कि भगवानसब में बसता है पर चोरी करते समय यह भूल जाता है। प्रेम करते हुए यह समझता है कि पूरी दुनियां भगवान ने बनाई है पर नफरत करते हुए यह भूल जाता है और हम कहते हैं कि मनुष्य सबसे बुद्धिमान प्राणी है।

(69) पैर की मोच और छोटी सोच हमें आगे बढ़ने नहीं देती। टूटी कलम और औरों से जलन खुद का भाग्य लिखने नहीं देती। काम का आलस और पैसों का लालच हमें महान बनने नहीं देता अपना मजहब ऊँचा और गैरों का ओछा ये सोच हमें इन्सान बनने नहीं देती। दुनियां में सब चीज मिल जाती है केवल अपनी गलती ही नहीं मिलती।

(70) बोलने पर हम अपना ही ज्ञान दोहराते हैं सुनने पर हम कुछ नया ज्ञान पाते हैं अतः वक्ता बनने के साथ-2 अच्छा श्रोता भी बनें।

(71) सामान्यतय वायु में 20.5 प्रतिशत आक्सीजन 79 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा 0.5 प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड व अन्य गैसें पाई जाती हैं इसकी संरचना में परिवर्तन होने से वायु प्रदूषण होता है। 60 प्रतिशत वायु प्रदूषण मोटर वाहनों व 35 प्रतिशत बड़े तथा मध्यम उद्योगों से फैलता है। एक मोटर वाहन 1000 कि.मी. की यात्रा में उतनी आक्सीजन फूँक डालता है जितनी एक व्यक्ति के लिए एक वर्ष हेतु पर्याप्त होती है।

(72) दिल्ली जैसे महानगरों में लोग जाने अनजाने में प्रतिदिन 20 सिगरेट के धुँये में जितना विष

होता है उतना विष दूषित वायु के कारण अपने फेफड़ों में खींच लेता है। मानव एक दिन में औसतन 21,600 बार श्वसन क्रिया करता है। इसके लिए लगभग 16 कि.ग्रा. आक्सीजन आवश्यक है। एक व्यक्ति 1 वर्ष में 12 टन कार्बन डाइआक्साइड श्वांस से बाहर फेंकता है।

(73) शुभ दिनों का सम्पादन यज्ञ के द्वारा किया जाता है जब अग्नि में सुगन्धित पदार्थों का गाय के घी से हवन तथा शरीर और औषधि आदि पदार्थ आदि की रक्षा करके अनेक प्रकार के रसों को उत्पन्न करता है उन शुद्ध पदार्थों के भोग से मनुष्य के विद्या, ज्ञान और बल की वृद्धि होती है अतः यज्ञ कुंड में डाली हुई सामग्री दुःख देने वाले रोगों को ऐसे बहाकर ले जाती है। जैसी नदी झाग को बहाकर ले जाती है और 99 प्रतिशत दुर्गुणों को सरलता से नष्ट कर देती है।

(74) प्राकृतिक सन्तुलन के लिए पृथ्वी पर 33 प्रतिशत भू भाग पर वन होना अति आवश्यक है हमारे देश में वर्तमान में लगभग 19 प्रतिशत भूमि पर ही वन हैं वे भी दिन प्रतिदिन घट रहे हैं प्रदूषण के कारण पौधों की कार्बन डाईआक्साइड की शोषण क्षमता व आक्सीजन निकालने की प्राकृतिक क्रिया मन्द पड़ रही है।

(75) रूस के वैज्ञानिक श्री शिरोविच एम मानियार चिकित्सा शास्त्री वैज्ञानिक टिलवर्ट फ्रान्स के डॉ0 डिलीट ने स्वीकारा है कि गाय के घी में गुड़, केसर, चावल, मुनक्का, किसमिस, मखाना आदि पदार्थों को मिलाकर हवन करने से क्षय, चेचक, हैजा, सन्निपात, मियादी बुखार के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। अमेरिका, चिली, पोलैण्ड, जर्मनी आदि देशों में हवन की लोक प्रियता बढ़ रही है।

(76) झाँसी उ.प्र. देवी दर्शनार्थ (मार्च 2015) को जा रहे लोग सड़क दुर्घटना में 11 श्रद्धालुओं की मृत्यु इसके अतिरिक्त प्रत्येक वर्ष सावन माह में कितने ही कावड़िये अकाल मृत्यु का शिकार होते आखिर कब रुकेगा यह अकाल मृत्यु का सिलसिला।

(77) जीवन में सुख का मूल धन व धन कमाने की विद्यायें एवं क्रियायें न होकर भारत के ऋषियों का मेधावी ज्ञान है। जीवन को स्वस्थ, शान्त, सुन्दर व सुगन्धित बनाने हेतु देव दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश (एक हजार पुस्तकों का सार) व्यवहार भानु, आर्योदेश्यरत्नमाला व स्वतव्यामन्तव्य प्रकाश पढ़ें।

(78) सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने की रीति-संस्कृत के विद्वान चाहें जैसा पढ़ें अन्य पाठक पहले भूमिका फिर दूसरा, दसवां, ग्यारहवां, चौथा, पांचवां, छठा, तेरहवां, चौदहवां , तीसरा, सातवां, आठवां, बारहवां, नौवा फिर प्रथम समुल्लास पढ़ें तब अच्छा समझ में आता है। सत्यार्थ प्रकाश बार-2 पढ़ें क्षण-2 मोक्ष का आनन्द प्राप्त होगा। लगभग 500 लोगों पर 1 सत्यार्थ प्रकाश देश में प्रकाशित हो चुकी है।

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

पुराणों को किसने बनाया?

लेखकः डॉ0 श्रीराम आर्य

उर्दू पढ़ने व जैन मन्दिर में जाने का निषेध

नवदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठ गतैरति।
गजैरापीड्य मानोऽपि न गछेज्जैन मन्दिरम्।।

(भविष्य पुराण प्रति सर्ग खण्ड 3 अध्याय 28)

अर्थात्–चाहे प्राण गले में आ जाये, पर उर्दू न बोले, मस्त हाथी से कुचले जाने का भी भय हो, पर रक्षा के लिए जैन मन्दिर में न जायें।

जैन मत की निन्दा

जैन धर्म समाश्रित्य सर्वे पाप प्रमोहिताः।
वेदाचारं परित्यज्य पाप यास्यन्ति मानवाः।। 26।।
पापस्य मूलमेवं वै जैन धर्मो न संशयः।
अनेन मुग्धा राजेन्द्र महामोहेन पातिताः।। 27।।

(पद्म पुराण, भूमि खण्ड 2, अध्याय 38, कलकत्ता)

भावार्थ– जैन धर्म सारे पापों से भरा हुआ है। लोग उससे मोहित होकर वेद धर्म के आचार को त्यागकर उसे ग्रहण कर लेते हैं। सब पापी हो जाते हैं॥ 26॥

इसमें संशय नहीं है कि जैन धर्म सब पापों की जड़ है। हे राजेन्द्र! जो इस पर मुग्ध हो जाते हैं वे पतित हो जाते हैं॥ 27॥

जैन धर्म की व्याख्या

अर्हन्तो देवता यत्र निर्ग्रन्थो दृश्यते गुरूः।
दयाचैवपरो धर्मस्तत्र मोक्षः प्रदृश्यते।। 17।।
दर्शनेऽस्मिन्न संदेह आचारान्प्रवदाम्यहम्।
यजनं याजनं नास्ति वेदाध्ययनमेव च।। 18।।
नास्ति संध्या तपो दानं स्वधास्वाहा विवर्जितम्।
हव्य कव्यादिकं नास्ति नैव यज्ञादिका क्रिया।। 19।।

पितृणाँ तर्पणं नास्ति नातिविर्वैश्वदेविकम्।
क्षपणस्य वरापूजा अर्हतोध्यानमुत्तमम्।। 20।।
अयं धर्म समाचारो जैन मार्गे प्रदृश्यते।
एत्तत्ते सर्व माख्यातंजिन धर्मस्य लक्षणम्।। 21।।

(पद्म पुराण, भूमि खण्ड 2, अध्याय 37, कलकत्ता)

भावार्थ– जैन धर्म में तीर्थंकरों को देवता एवं निर्ग्रन्थ गुरू माने जाते हैं, जहाँ दया को ही परम धर्म एवं मोक्ष का मार्ग माना जाता है, जिसका दर्शन सन्देहजनक है उसका आचार मैं बतलाता हूँ। जैन धर्म में यज्ञादि, वेद का पढ़ना, सन्ध्या, तप, दान, हवन, श्राद्ध, यज्ञादि क्रिया, पितरों का तर्पण, अतिथि पूजा आदि कुछ भी नहीं हैं। जैन धर्म में जैन साधुओं की पूजा तथा तीर्थंकरों का ध्यान ही उत्तम माना गया है। जैन धर्म का यही सन्देशा अर्थात् समाचार है और यही जैन मत का लक्षण है।

बौद्ध धर्म

दृष्टार्थ प्रत्यय करान्देह सौख्यैक साधकान्।
बौद्धागमविनिर्दिष्टान्धर्मान्वेह परांस्तत्।। 35।।

(शिव पुराण रूद्र संहिता, युद्ध खण्ड, अध्याय 5)

भावार्थ– प्रत्यक्ष अर्थ में ही विश्वास होना चाहिए, यही एक मात्र देह सुख का साधक है। यह धर्म वेद से परे बौद्ध शास्त्रों में निर्दिष्ट हुए हैं।

बौद्ध धर्म की निन्दा

बलिना प्रेषितो भूमौ मयः प्राप्तौ महासुरः।
शाक्यसिंह गुरुर्गेयो बहुमाया प्रवर्तकः।। 30।।
स नाम्ना गौतमाचार्यो दैत्य पक्ष विवर्धकः।
सर्व तीर्थेषु ते नैव यन्त्राणि स्थापितानि वै।। 31।।
तेषामधोगता येतु वै बौद्धाश्वासन्समन्ततः।
शिखा सूत्र विहीनाश्च बभूवुर्वर्णसंकराः।। 32।।
दश कोट्यः स्मृता आर्या बभूवुबौद्ध मार्गिणः।। 33।।

(भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व 4, अध्याय 21)

भावार्थ– बलि ने पृथ्वी पर एक बहुत माया प्रवर्तक महान् असुर को भेजा जो शाक्यसिंह के नाम से विख्यात हुआ। उसे गौतम आचार्य भी कहते थे। वह दैत्यों के पक्ष को बढ़ाने वाला था।

उसने सभी तीर्थों में अपनी संस्था स्थापित की। जो लोग उसके मतानुयायी बौद्ध बने, वे चोटी, जनेऊ से हीन एवं नीच गति को प्राप्त होकर वर्णसंकर हो गये। दस करोड़ आर्य बौद्ध मार्ग के अनुगामी

हो गये।

श्री मद्भागवत पुराण में स्कन्द 1, अध्याय 3 व स्कन्द 3, अध्याय 7 में दो सूचियाँ अवतारों की दी हैं। दोनों में ऋषभ देव, जो जैन तीर्थंकर माने जाते हैं तथा बुद्ध जी जो बौद्ध धर्म के प्रवर्तक थे, इन दोनों को सनातनी अवतारों में माना गया है। यथा–

बुद्ध जी

ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नाम्नाजिन सुतः कीकटेषुभविष्यति।। 24।।

(श्री मद्भागवत पुराण स्कन्द 1, अध्याय 3)

भावार्थ– कलियुग के आने पर असुरों को मोहने के लिए बुद्ध के नाम से अवतार जिन सुत कीकट देश में होगा।

ऋषभ देव जी

अष्टमे मेरू देव्यां तुनाभेर्जति उरुक्रमः।
दर्शयन्वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम्।। 13।।

भावार्थ– ऋषभ देव जी आठवीं बार नाभि राजा की पत्नी मेरू देवी के गर्भ से प्रकट हुए, उन्होंने धीरों को सबसे नमस्कार करने योग्य अर्थात् वन्दनीय आश्रम दिखाया।

पदम् पुराण सृष्टि खण्ड अध्याय 13 में भी बौद्ध व जैन धर्म का वर्णन आता है। इसी प्रकार अन्य पुराणों में भी इन धर्मों का उल्लेख मिलता है। विस्तारभय से हम सारे प्रमाणों को यहां नहीं देते हैं।

इन प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि पुराणों का रचनाकाल जैन व बौद्ध धर्म की स्थापना के पश्चात् का है। इसीलिए पुराणों में कहीं इन मतों की प्रशंसा है तो कहीं इनकी निन्दा की गयी है।

बड़े आश्चर्य की बात है कि वेद विरोधी इस नास्तिक बौद्ध मत के प्रवर्तक बुद्ध जी को हिन्दुओं ने अपने विष्णु के अवतारों की सूची में सम्मिलित कर लिया है, जबकि सैद्धान्तिक विरोध होने से उनका बहिष्कार किया जाना चाहिए था।

अठारह पुराणों में भविष्य पुराण का भी एक प्रमुख स्थान माना जाता है। उसमें हमको निम्न प्रकार भारत की ऐतिहासिक घटनाओं एवं पुरुषों का वर्णन मिलता है–

पुराणों में इतिहास

ईसामसीह

ईशपुत्रंचमां विद्धि कुमारी गर्भ संभवम्।। 23।।
ईसामसीह च दस्यूना प्रादुर्भूता भयंकारी।
तामहं म्लेक्षतः प्राप्य मसीहत्व मुपागतः।। 26।।

मौहम्मद साहब

मौहम्मद इतिख्यातः शिष्य शाखा समन्वितः।। 5।।

मुसलमान

लिंगच्छेदी शिखाहीनः श्मश्रुधारी सदूषकः।

उच्चालापी सर्वभक्षी भविष्यति जनो मम।। 25।।

तस्मान्मुसलवन्तो हि जातयो धर्म दूषकाः।। 27।।

(अध्याय 3, प्रतिसर्ग पर्व, खण्ड 3)

सिकन्दर

सुकन्दरो म्लेक्षपतिः सदा मद्वर्द्धनेरतः।। 46।।

(अध्याय 21, प्रतिसर्ग पर्व, खण्ड 4)

तैमूर लंग

सुतस्तिमिरलिंगस्य सरूषोनाम विश्रुतः।। 2।।

बाबर

पंचवर्ष कृतं राज्यं तत्सुतो बाबरोभवत्।। 4।।

हुमायूँ

होमायुषा मदान्धेन देवताश्च निराकृताः।। 5।।

अकबर

अतः सोकवरो नाम होमायुस्तनयस्तव।। 14।।

केशव तानसेन

केशवो तानसैनश्च वैज वाक्स तुमाधवः।। 21।।

बीरबल

पूर्व जन्मनि देवापिः स च बीरबलोऽ भवत्।। 22।।

तुलसीदास

विख्यातस्तुलसी शर्मापुराणा निपुणः कविः।। 28।।

सूरदास

सूरदास इति ज्ञेयः कृष्ण लीला करः कवि।। 30।।

चरणदास

वर्द्धनश्च सवै जातो नाम्ना चरणदासकः।। 37।।

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

उपोद्घात

लेखकः–टी.एल. वासवानी

यह पुरुष– दयानन्द अद्भुतरूप से सत्य है, इसलिये मैं उसकी ओर आकर्षित होता हूँ यह दयानन्द अपनी जाति को प्रोत्साहन देने वाला राष्ट्र निर्माता और आर्य आदर्श का प्रचारक था, इसलिये मैं कहता हूँ दयानन्द को मेरा प्रणाम! यह दयानन्द शक्तिशाली तपस्वी और बाल ब्रह्मचारी था इसलिये मैं प्रेमपूर्ण श्रद्धा के साथ उसके आगे सिर झुकाता हूँ।

दयानन्द की शास्त्रार्थ की शक्ति बहुत बड़ी थी परन्तु वह उसकी आत्मिक शक्ति और तपस्या की तुलना में कुछ नहीं है इस दृष्टि से दयानन्द को आरिस्टाइल (अरस्तू) या टालस्टाय से भी, जिन पर संसार को उचित रीति से अभिमान है–महान् मानता हूँ, अरिस्टारल एक जबरदस्त विचारक था परन्तु उसने अपने हृदय का संयम नहीं किया था वह दयानन्द के समान अथवा भारत के महर्षियों के समान तपस्वी न था जब मैं टाल्सटाय की प्रतिभा की गम्भीरता को देखता हूँ तो प्रशंसा के भावों में डूब जाता हूँ परन्तु सुधारक टाल्सटाय और व्यक्तिरूप टाल्सटाय में कितना भेद है! कितना अच्छा होता कि रूस का यह पैगम्बर अपने जीवन में उन बातों को अधिक चरितार्थ करता जिनका उसने इतनी सुन्दरता और सच्चाई से उपदेश किया है टाल्सटाय एक कलाभिज्ञ (artist) के रूप में दयानन्द से बढ़कर है परन्तु आत्मिकशक्ति और तपस्या में दयानन्द से हीन है। मैं स्वामी मंगलानन्द पुरी का निम्नलिखित घटना की रिपोर्ट भेजने के लिये ऋणी हूँ, जो उनके पिता ने जो आर्य सामाजिक नहीं थे, वर्णन की थी। स्वामी मंगलानन्द पुरी अपने पिता की गंगा के किनारे दयानन्द से भेंट होने का उल्लेख करते हुये मुझे लिखते हैं:–

मेरे पिता ने कहा– मैंने तथा तीन मेरे साथियों ने रात्रि के समय दयानन्द के पास जाने का निश्चय किया। हम लोग रात के 12 बजे के करीब गंगा के किनारे पहुंचे, हमने गंगा के किनारे दयानन्द को जागते हुये पाया, उन्होंने केवल एक जांघ ढांकने का अंगोंछा बांध रखा था, इस तीव्र सर्दी में भी उनके ऊपर कोई कम्बल न था, वे रेत के विस्तर पर लेटे हुये थे, जब हम पहुंचे तो उठ बैठे, हमने उनसे कहा 'स्वामी जी, बहुत सर्दी पड़ रही है, यह क्या बात है कि आपको नहीं लगती' ? उन्होंने उत्तर दिया कि 'आपके चेहरे को सर्दी क्यों नहीं लगती ? सदा खुला रहने से सर्दी को सहना और उसे अनुभव न करना उसके लिये स्वाभाविक हो गया है, ठीक इसी प्रकार मेरे शरीर के लिये सर्दी को सहना और उसे अनुभव न करना स्वाभाविक हो गया है।

दयानन्द ने अपने को 'दृढ़ता के विद्यालय में शिक्षित किया था, सादगी में ही उसकी महत्ता थी, और तपस्या में उनकी शक्ति थी, वह अपनी जाति सेवा के लिये फकीर हो गया, इसीलिये उसका कार्य

धन्य है और नाम स्थिर है जब मैं ऋषि के जीवन की अनेक घटनाओं को पढ़ता हूँ, जो कि ब्रह्मचर्य के कारण सुन्दर और आत्मसमर्पण से प्रकाशमान हो रही हैं, तो मुझे चीन के महापुरुष लोट्जे (Laotze) के निम्न शब्द याद आते हैं :-

'आकाश स्थिर है और पृथिवी ध्रुव है क्यों आकाश और पृथिवी स्थिर तथा ध्रुव है ? कारण कि वे अपने लिये नहीं जीते, इसी कारण से वे अविचल हैं'।

'इसीलिये सच्चा मनुष्य अपने व्यक्तित्व को पीछे रखता है परन्तु उसका व्यक्तित्व सामने आ जाता है, वह अपने शरीर को अर्पण कर देता है परन्तु उसका शरीर सुरक्षित रहता है क्या? यह इसीलिये नहीं है कि वह अपने स्वार्थ के पीछे नहीं चलता, और इसी कारण वह अपने स्वार्थ को पूरा करता है।'

II पथप्रदीप

ईश्वर ने इस व्यक्ति को इसलिये भेजा कि वह ऐसे समय में जबकि भारत के लाखों पुरुष रात्रि में घूम रहे थे, प्रकाश दीप को ऊँचा करे। दयानन्द उन ज्योतिस्तम्भों में से एक है जो समय-2 पर प्रकट हुये हैं और जो भारत को अन्धकार से प्रकाश में लाते रहे हैं, दयानन्द का प्रकाशप्रदीप वैदिक विज्ञान था!

दयानन्द के एक जर्मन समालोचक ने ठीक ही कहा है:-

'दयानन्द सरस्वती उदार विचार रखने वाले व्यक्ति थे, वे एक अद्भुत स्वप्न देखने वाले आदर्शवादी थे, उनके मन में उस भारत की कल्पना थी जो अन्ध विश्वास से रहित हो, साइन्स के लाभों से पूर्ण हो' एक ईश्वर की पूजा करे, और स्वाधीनता के योग्य हो जावे, तथा सारे संसार में विज्ञान और धर्म के आदि स्रात होने की प्रतिष्ठा उसे प्राप्त हो, प्रत्येक इस बात को स्वीकार करेगा कि पुनरुज्जीवित भारत की वह कल्पना जिसे आर्यसमाज के प्रवर्त्तक और संस्थापक ने सोचा था, बहुत ही उज्जवल और उत्साहपूर्वक है' यह उज्जवल दर्शन निस्सन्देह दयानन्द को एक द्रष्टा- ऋषि- उन महान् आत्माओं का उत्तराधिकारी, जिन्होंने आर्यावर्त के जीवन को प्रोत्साहित और समृद्ध किया था- बना देता है।

अथार्षेयं प्रवृणीते। ऋषिभ्यश्चैनमेतद्देवेभ्यश्च निवेद यत्ययं महवीर्यो यो यज्ञं प्रापदिति, तस्मदार्षेयं प्रवृणीते। -(शतपथ का. 1। ब्रा. 4)

वेदों से जो कुछ सीखा है उसे पढ़ाना ऋषियों का काम है, और जो कोई भी उन प्राचीन ऋषियों की यह सेवा करता है कि दूसरों को वह विद्या सिखावे वह स्वयं ऋषि है।

तब क्या मेरी भूल है यदि मैं दयानन्द को 'अर्वाचीन भारत का ऋषि' कहूँ ?

III प्रभात की पुकार

वेद ! जिसमें 1000 से कुछ अधिक सूक्त और 10000 मन्त्र हैं, और उपनिषद भी बहुत बड़ी धर्मपुस्तक नहीं ! परन्तु ज्ञान से भरपूर हैं ! कल्पना में शक्तिपूर्ण और उनमें कितना उच्च प्रोत्साहन है!

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये, शंयोरभि स्रवन्तु नः

वह दिव्य माता (परमेश्वर) हमारी आध्यात्मिक प्यास को बुझावे और हम पर कल्याण की वृष्टि करे!

ओम् भूः पुनातु शिरसि। ओम भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओम् स्वः पुनातु कण्ठे। ओम् महः पुनातु हृदये। ओम् जनः पुनातु नाभ्याम्। ओम् तपः पुनातु पादयोः। ओम् सत्यं पुनात पुनः शिरसि। ओम खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र॥ जीवनदाता परमेश्वर शिर को शुद्ध करे ! पवित्र ईश्वर हमारे नेत्रों को शुद्ध करे! सुखदाता ईश्वर हमारे कण्ठ को शुद्ध करे ! सर्वज्ञ ईश्वर हमारे पैरों को शुद्ध करे, नित्य ईश्वर हमारे मस्तिष्क को शुद्ध करे, सर्वव्यापक परमात्मा सब स्थानों को शुद्ध करे।

मन्त्रों के पीछे मन्त्र और सूत्रों के पीछे सूत्र इन उच्च अभिलाषाओं और आकांक्षाओं से भरे हुये हैं कि जिनसे बढ़कर पवित्रभाव मनुष्य के मुख से किसी युग में प्रकट नहीं हुये थे ! बारम्बार ऋषि अपने दिव्यदर्शन में परमात्मा को 'सबका पिता' 'विश्व का जीवन' 'सम्पूर्ण आनन्द' 'सब लोकों का रचयिता और स्वामी' जो कि पाप के अन्धकार को दूर करने वाला है' इत्यादि भावों के साथ पुकारते हैं, और बारम्बार हम इस विचार को प्रकट हुआ पाते हैं:-

अन्तरिक्ष में स्थित सब लोकों में शान्ति हो! आकाश, जल, पृथ्वी और वायु में शान्ति हो प्राणियों और वनस्पतियों के लिये शान्ति हो ! सर्वत्र प्रत्येक वस्तु के लिये शान्ति हो और यह शान्ति हमारे लिये भी हो!

इन अपने आर्यपूर्वजों के सूक्तों (भजनों) में मुझे वह पुकार सुनाई देती है जो कि, मेरा गम्भीर विश्वास है कि आधुनिक जगत् के लिये भी मूल्य रखती है, उनमें ऐसी प्राचीनता है, जिसमें बुढ़ापा नहीं, ऐसी प्राचीनता' जो मरती नहीं, अपितु प्रकृति के समान अपनी शक्ति को प्रतिदिन नया कर लेती है, उषा (प्रभात) को एक वैदिक सूक्त में देवताओं की माता कहा गया है आर्य ऋषियों ने जो इतिहास के उषाःकाल में उत्पन्न हुये हमारे लिये एक सन्देश भेजा है, जिससे मेरा विश्वास है कि, राष्ट्रों को मुक्ति प्राप्त होगी। हमें प्रभात उषाःकाल-की पुकार अवश्य सुननी होगी यदि हम जानना चाहते हैं कि सभ्यता का पुनर्निर्माण किस तरह होगा! ' अन्तोले फ्रांस' ने ठीक कहा है।

हमें भूतकाल की प्रत्येक वस्तु तुच्छ समझकर फेंक न देनी चाहिये, क्योंकि भूतकाल के आधार पर भविष्य का भवन खड़ा कर सकते हैं।

अर्बाचीन युग की वैज्ञानिकता और बुद्धिपूर्वक संग उन प्रणाली बहुमूल्य है, हमारा उनके बिना काम नहीं चल सकता, परन्तु आधुनिक युग का बड़ा खतरा उसका जीवन के केवल एक हिस्से में लग जाना है, इसीलिये दूसरों से अलग रहने के, वैभव इकटठा करने के, और अत्याचार के भाव पाये जाते हैं, इसीलिये व्यक्ति और राष्ट्रों की पीड़ा हो रही है, अपनी अन्तरात्मा को, नित्य ईश्वर की स्वभाविक प्रेरणा को हमने दबा दिया है! पवित्रता और एकता के भाव को हमने कुचल डाला है। ऋषि ने बतलाया था- 'जिस तरह शरीर पानी से शुद्ध होता है उसी तरह मन सत्य से, और आत्मा तप से शुद्ध होता है आर्य ऋषियों ने हमारे लिये, विद्या, एकता और 'तपस्या' का सन्देश छोड़ा है सबमें एक ही प्राण और एक ही आत्मा है! और क्या यह सत्य नहीं है कि अविद्या से फूट फैलती है और विद्या से एकता बढ़ती है विद्या

मेल को कहते हैं, विद्या एकता की ओर ले जाती है यही हम प्राचीन ग्रन्थों में पाते हैं परम एकता का सन्देश–प्रकृति के भीतर सब वस्तुओं की एकता मनुष्यता के भीतर सब राष्ट्रों की और विश्वजीवन में सब प्राणियों की एकता–यह सन्देश एक प्राचीन जाति का है–आर्य लोगों का है जो कि भोगवाद के कीचड़ में फंसी सभ्यता में रहने वाले हम लोगों की अपेक्षा उस 'विश्वात्मा' के अधिक समीप रहते थे यह सन्देश ऋषियों की यह बुद्धि, प्रभात का सन्देश है! और इस सन्देश के सुनने से उन उत्पादक शक्तियों (Creative Forces) के जागने की आशा है जिनकी हमें स्वराज्य स्थापना के लिये, भारत में नवयुग–एक बड़े नवयुग और सभ्यता के पुनरुज्जीवन का प्रारम्भ करने के लिये तत्काल आवश्यकता है।

IV शक्तिशाली पुरुष धन्य हैं

वेद के अमरीकन समालोचक डॉक्टर ब्लूमफील्ड कहते हैं, सारे हिन्दू साहित्य में राष्ट्रीय उन्नति और राष्ट्रीय आशा का कोई भाव प्रकट नहीं हुआ है मैं जोरदार शब्दों में इस का खण्डन करता हूँ, यह विचार गलत और आर्य आदर्श से विरुद्ध हैं। प्राचीन आर्य 'शक्ति और बल' के सन्देश में विश्वास रखते थे। वैदिक सूक्त 'शक्ति' के वायुमण्डल में चलते दिखाई देते हैं। यजुर्वेद में एक अति संक्षिप्त प्रार्थना है कि 'तुझे शक्ति के लिये'–अर्थात् यह आहुति यज्ञकर्त्ता शक्ति प्राप्त होने के लिये देता है। धर्म के साहित्य में सबसे उच्च प्रार्थना एक वैदिक मन्त्र में है जिसमें परमात्मा को 'वलद' शक्ति का देने वाला कहा गया है, दूसरी वैदिक प्रार्थना इस प्रकार है :–

हम सौ वर्ष तक देखने में समर्थ रहें !
हम सौ वर्ष तक जीते रहें !
हम सौ वर्ष तक सुनने में समर्थ रहें !
हम सौ वर्ष तक बोलने में समर्थ रहें!
हम सौ वर्ष तक स्वाधीन रह सकें !
और सौ वर्ष से भी अधिक!

यह आकांक्षायें एक ऐसी जाति में नहीं हो सकतीं जिसमें राष्ट्रीय आशा और उन्नति के भाव न हों ! वैदिक प्रार्थनाओं में हम बारम्बार आशा, श्रद्धा, और शक्ति के भावों को पाते हैं, जीसस ने 'आकाश में स्थित पिता' से प्रार्थना की है कि 'हमें आज दैनिक भोजन दो' हमारे आर्य ऋषियों ने 'द्यौष्पितर' (आकाश में स्थित पिता) से स्वास्थ्य शक्ति, अधिक आयु, और बलवान् सन्तानों के लिये प्रार्थना का है। ईश्वर को 'ओज' (शक्ति का सार) कहकर सम्बोधन किया गया है। सचमुच वह ईश्वर इस संसार की बीजरुप शक्ति नहीं है? अथर्ववेद में ईश्वर की स्तुति में उसे 'बल' और 'आयु' कहा गया है–'शक्ति' विषयक मंत्र वेद में बहुत जगह फैले हुए हैं। और यही सिद्धान्त उपनिषद् में दूसरे शब्दों एक बहुत सुन्दर सूत्र में बतलाया गया है कि 'मनुष्य के कर्म ही उसके भोग को बनाते हैं।' इसी सिद्धान्त की ऋषि दयानन्द ने नये सिरे से घोषणा की।

–(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

ब्रह्मचर्य

लेखकः–पण्डित सत्यव्रत

वीर्य–नाश और मृत्यु

शरीर की प्रारम्भिक अवस्था में संचय शक्ति प्रधान रहती है। हम खाते, पीते और मौज उड़ाते हैं। किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करते। शरीर बढ़ता चला जाता है। कहां बचपन का एक हाथ का नन्हा सा पुतला और कहां छः फीट लम्बा, डेढ़मन का बोझ ! परन्तु इस वृद्धि में यही आंख, नाक, कान, अंग, प्रत्यंग तथा आत्मा विद्यमान हैं। वही छोटी चीज बड़ी हो गई है, वही हल्की वस्तु भारी हो गई है। इस आश्चर्यजनक परिवर्तन का कारण शरीर की संचय–शक्ति है। हमने बड़े परिश्रम से उपादेय पदार्थों का शरीर में संग्रह किया है, इसी से आज देह उन्नत तथा प्रवृद्ध दिखाई देता है।

परन्तु यह उन्नति चिर–स्थायी नहीं। दिन चढ़ कर ढलता है, लहर उठकर गिरती है। शरीर भी हट्टा, कट्टा होकर क्षीण होने लगता है। संचय के अनन्तर विचय प्रारम्भ होता है। जीवन के बाद मृत्यु पदार्पण करने लगती है। हम दैनिक व्यवहार में देखते हैं कि मनुष्य की समृद्ध होती हुई शक्तियें किसी समय आकर ठहर जाती हैं, रुक जाती हैं, कई बार पतनोन्मुख होने लगती हैं। यह क्यों ?

जिन्होंने संचय के पश्चात् विचय, अथवा उन्नति के बाद नाश के अवश्यम्भावी चक्र पर विचार किया है उनका कथन है कि इसका कारण, जीवन की प्रौढ़ावस्था के अनन्तर, दो परस्पर विरुद्ध प्रवृत्तियों का टक्कर खाना है। शरीर–वृद्धि की स्वार्थमय प्रवृत्ति प्रजा–जनन की परमार्थ प्रवृत्ति से दब जाती है। मनुष्य घर बना कर बैठ जाता है। अपने शरीर में संचय करना छोड़कर सन्तानोत्पत्ति करना प्रारम्भ करता है। प्रकृति खेल करती हुई उसे अपनी उंगलियों पर नचाती है। जो व्यक्ति खाने, पीने और अपने शरीर के विषय में सोचने से आराम नहीं लेता था वही परमार्थ के चक्कर में घूमने लगता है। अपनी सन्तान के लिए कठिन से कठिन कष्ट भोगने के लिए तैयार हो जाता है। स्वभावसिद्ध क्रम से स्वार्थ की अवस्था के पीछे स्वार्थ–त्याग की अवस्था आ जाती है।

मनुष्य की 'शक्तियों का ह्रास' तथा 'प्रजा–जनन' दोनों एक ही समय में प्रारम्भ होते हैं। प्रजोत्पत्ति के पश्चात् अधिक शारीरिक उन्नति की सम्भावना नहीं रहती। जिस तत्व से शारीरिक उन्नति हो सकती थी वह प्रजोत्पत्ति में काम आ जाता है, फिर शारीरिक उन्नति हो सकती थी वह प्रजोत्पत्ति में काम आ जाता है, फिर शारीरिक उन्नति क्यों न रुक जाय ? प्रजा उत्पन्न करना बुरा कार्य नहीं। ऊँचे अर्थों में सन्तान उत्पन्न करना ब्रह्म का अनुकरण करना है। परन्तु इतने से क्या प्रजोत्पत्ति के अवश्यम्भावी परिणाम रुक सकते हैं? नहीं, कभी नहीं।

प्रजोत्पत्ति के प्रारम्भ होते ही शारीरिक शक्तियों का ह्रास प्रारम्भ हो जाता है। संचय की शक्तियों को विचय की शक्तियें आ घेरती हैं। मनुष्य का कदम मृत्यु की तरफ बढ़ने लगता है क्योंकि संजीवनी शक्ति के बीज का शरीर से बाहर जाना जीवन का प्रतिद्वन्दी है। जब शरीर में वृद्धि अधिक नहीं समा सकती तब उत्पत्ति प्रारम्भ करने से किसी हानि की सम्भावना नहीं परन्तु इससे पूर्व उत्पत्ति का कार्य प्रारम्भ करने पर मनुष्य किसी प्रकार भी नाश से नहीं बच सकता। प्रजा-जनन, शरीर-वृद्धि के चरम सीमा तक पहुंच जाने का स्वाभाविक परिणाम होना चाहिये-इसी का नाम ब्रह्मचर्य है। जब भी शरीर-वृद्धि के होते हुए प्रजोत्पत्ति की जाती है तभी ब्रह्मचर्य के नियमों का उल्लघंन होता है। 'शरीर वृद्धि' अथवा 'संचय' की अवस्था में वीर्य का हस्त-मैथुन, व्यभिचार अथवा बाल-विवाह आदि किसी रूप में भी नाश करना 'मृत्यु' का आवाहन करना है क्योंकि ब्रह्मचर्य ही जीवन और अब्रह्मचर्य ही मरण है।

उत्पत्ति के साथ नाश का अविनाभाव सम्बन्ध है। प्रजोत्पत्ति में वीर्य का क्षय होता है। वीर्य के क्षय का बदला चुकाने के लिए प्रत्येक प्राणधारी की मृत्यु की गठड़ी सिर पर उठानी पड़ती है। जीवन शास्त्र पर जिन्होंने लिखा है उनकी पुस्तकों से कई ऐसे दृष्टान्त संग्रहीत किये जा सकते हैं जिनसे उत्पत्ति तथा नाश का सम्बन्ध स्पष्ट प्रतीत होने लगे। पाठकों को वीर्य-रक्षा के महत्व को दर्शाने के लिए हम यहां ऐसे ही कुछ दृष्टान्तों का संग्रह करेंगे।

हैवलाक एलिस्र महोदय अपनी पुस्तक 'एरोटिक सिम्बोलिज्म' के 168 पृ. पर लिखते हैं:-

"वीर्य नाश में वेदना तन्तुओं का जो तनाव होता और शरीर को धक्का पहुंचता है वह इतना भयंकर होता है कि उससे सम्भोग के बाद प्रतीत होने वाले दुष्परिणामों का प्रकट होना सर्वथा स्वाभाविक है। पशुओं में यही देखने में आया है। प्रथम सम्भोग के बाद बड़े-2 तैयार बैल और घोड़े बेहोश होकर गिर पड़ते हैं, सूअर संज्ञा-हीन हो जाते हैं, घोड़ियें गिर कर मर जाती हैं। मनुष्यों में मौत तो देखी ही गई है परन्तु उसके साथ ही सम्भोग के बाद की थकान से अनेक उपद्रव भी उत्पन्न हो जाते हैं। कभी-2 कई दुर्घटनाएं होती देखी गई हैं, कई बार मिर्गी हो जाती है, अंग ढीले पड़ जाते हैं, तिल्ली कट जाती है। रुधिर के दबाव को न सह सकने के कारण कईयों के दिमाग की नाड़ियें खुल जाती हैं, अर्धांग हो जाता है। वृद्ध पुरुषों के वेश्याओं के साथ अनुचित सम्बन्ध का परिणाम अनेक बार मृत्यु देखा गया है। बहुत पुरुष नव-विवाहिता बन्धुओं के आलिंगन के आवेग को नहीं सह सके और उसी अवस्था में प्राण-विहीन हो गये।"

शहद की मक्खियें प्रथमालिंगन के समकाल ही जीवन से हाथ धो बैठती हैं। तितलियों का श्वास सम्भोग के साथ ही समाप्त हो जाता है। कीड़ियों की यही कहानी है। मछलियाँ सन्तानोत्पत्ति करने के अनंतर अत्यन्त क्षीण हो जाती हैं। मृत्यु उनसे दूर नहीं रहती। कीड़ों, पतंगों में प्रजोत्पत्ति तथा मृत्यु दोनों ऐसे मिले जुले हैं कि एक को दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। चूहे, गिलहरी, खरगोश प्रजोत्पत्ति के बाद कई बार मर जाते हैं, कई बार बेहोश होकर एक ओर गिर जाते हैं। पक्षियों में सम्भोग का परिणाम

सर्वत्र तात्कालिक मृत्यु नहीं पाया जाता परन्तु इसके दुष्परिणाम उनमें भी किसी न किसी रूप में बने ही रहते हैं। जीवन को लहर के आवेग में उनको जो मधुर गीत निकलते थे वे अब सूख जाते हैं, चित्रकार को चकित कर देने वाले पंखों के रंग उड़ जाते हैं, नाचना भूल जाता है, कदम ढीला हो जाता है। ज्यों-2 जीवन उन्नति की तरफ चलता जाता है त्यों-2 उत्पत्ति के साथ जुड़ी हुई मृत्यु भी भयंकर स्वरूप को सौभ्य बनाने का प्रयत्न करती है परन्तु कितना भी क्यों न हो, उसकी भयंकरता का रुद्र-रूप शिथिल होता हुआ भी दुष्परिणामों में वैसे का वैसा ही बना रहता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पत्ति की थकान का प्रथम शिकार, नाटक का सूत्रधार 'नर' ही होता है। मरना हो तो वही पहले मरता है, बेहोश होना हो तो वही पहले होता है। वही इस उपाख्यान का प्रधान पात्र है, उसी ने रंगीलेपन में फाग उड़ाया है, उसी से किस्सा भी खतम होता है। 'मादों' का जीवन भी संकट में पड़ता है परन्तु 'नर' की अपेक्षा बहुत कम। क्षुद्र प्राणियों में प्रजोत्पत्ति की ज्वाला भयंकर रूप धारण कर 'नर' को तत्काल भस्म कर देती तथा 'मादा' को स्वल्पकाल में ही भस्मावशेष कर देती है। मनुष्य में इस ज्वाला की शिखा धीमे-2 जलती है। कभी ज्वाला चमक उठती और कभी दब जाती है। इस ज्वाला में गर्मी में मनुष्य को अनेक प्रसुप्त शक्तियों का क्रमिक विकास होता है परन्तु इसकी शिखाओं को भयंकर स्वरूप देने वाले को स्मरण रखना चाहिये कि यदि इस आग ने प्रचण्ड रूप धारण किया तो उसी को स्वयं बलि बनकर अग्नि-देव की रुधिर पिपासा को शान्त करना होगा।

इस प्रकरण में जेडीज और थौमसन ने 'दि एवोल्यूशन आफ सेक्स' में जो विचार प्रकट किये हैं उनका उल्लेख करना अत्यन्त शिक्षा प्रद सिद्ध होगा। अपनी पुस्तक के 255 पृ. पर वे लिखते हैं:-

"मृत्यु तथा उत्पत्ति का सम्बन्ध बहुत स्पष्ट है परन्तु साधारण बोलचाल में इस सम्बन्ध को शुद्ध रूप में नहीं कहा जाता। लोग कहते हैं कि सब प्राणियों को मरना अवश्य है अतः उन्हें सन्तानोत्पत्ति जरूर करनी चाहिये। ऐसा न करने से प्राणियों का सर्वथा लोप हो जायेगा। परन्तु यह बात अशुद्ध है। पीछे क्या होगा या क्या न होगा, यह सोचने वाले संसार में थोड़े हैं। यथार्थ बात जो प्राणियों के जीवन के इतिहास से समझ पड़ती है यह नहीं है कि "वे प्रजोत्पत्ति इसलिए मरते हैं क्योंकि वे प्रजोत्पत्ति करते हैं'। गेटे का कथन सत्य है कि 'मृत्यु से बचने के लिए हम प्रजोत्पत्ति नहीं करते परन्तु क्योंकि हम प्रजोत्पत्ति करते हैं इसलिए उसके अवश्यम्भावी परिणाम मृत्यु से नहीं बचते"।

"विजमैन तथा गेटे, दोनों ने भिन्न-2 उद्देश्यों से ऐसे कीटों तथा पतंगों के जीवनों को दर्शाया है जो 'वीर्य-कीट' के उत्पन्न करने के कुछ घण्टों के बाद मर जाते हैं। 'नर' में विचय शक्ति अधिक है अतः उसके जल्दी खतम होने की सम्भावना है। मकड़ी सम्भोग के बाद मर जाती है। मकड़ी का मरना अन्य प्राणियों के मरने पर प्रकाश डालता है। —उच्च प्राणियों में उत्पत्ति के लिए किये जाने वाले त्याग के साथ मिला हुआ नाश का अंश कम अवश्य हो जाता है परन्तु फिर भी प्रेम का बदला चुकाने के लिए मृत्यु का भूत बिल्कुल पीछा कभी नहीं छोड़ता। प्रेम के प्रभात का अन्त प्रायः मृत्यु की घोर-निशा में होता है।"

उपर्युक्त उद्धरण में एक कथन बड़े महत्व का किया गया है। जिडिज तथा थौमसन की सम्मति है कि प्राण जगत् में उत्पत्ति इसलिए प्रारम्भ नहीं होती क्योंकि उनकी मृत्यु अवश्य होती है परन्तु उनकी मृत्यु इसलिए होती है क्योंकि वे उत्पत्ति प्रारम्भ कर देते हैं। मृत्यु सन्तानोत्पत्ति का अवश्यम्भावी परिणाम है। निस्सन्देह यह स्थापना है परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि इस स्थापना के करने वाले साधारण व्यक्ति नहीं हैं। यह स्थापना ऐसे व्यक्तियों ने की है जिनका विज्ञान का ऋण है, जिन्होंने जीवन-शास्त्र के प्रश्न पर अपना बहुत समय बिताया है। अनुभव इस स्थापना की पुष्टि करता है। उत्पत्ति के साथ नाश के इस नित्य सम्बन्ध को ही तो देखकर ऋषि, मुनियों ने ब्रह्मचर्य पर इतना बल दिया था। ब्रह्मचर्य के आदर्श को उत्तरोत्तर बढ़ाया था। वसु, रुद्र तथा आदित्य ब्रह्मचारियों में वसु को निकृष्ट ब्रह्मचारी ठहराया था। कितना ऊंचा लक्ष्य है ! चौबीस साल तक ब्रह्मचर्य के प्रश्न को विवाद अथवा व्याख्यान देने तक सीमित नहीं रखा था। ब्रह्मचर्य का प्रश्न उनके लिए जीवन मरण का प्रश्न था। इस पर उन्होंने ऐसे ही विचार किया था जैसे आजकल के विद्वान् किसी 'सायन्स' के विषय पर करते हैं। संयम तथा ब्रह्मचर्य को लक्ष्य में रखकर उन्होंने नियमित पाठशालाएं चलाईं थीं जिनका नाम गुरुकुल था। गुरुकुलों में आजकल के स्कूलों और कॉलेजों की तरह किताबें रटवा कर विद्यार्थियों को पैसा पैदा कर सकने की मशीन बना देना उद्देश्य न होता था। आधार की मर्यादा तक पहुंचना वहां का ध्येय रखा गया था। जिस प्रकार आजकल किताबें पढ़ाना स्कूलों का अन्तिम उद्देश्य समझा जाता है ठीक इसी प्रकार ब्रह्मचर्य का पालन कराना, संयम पूर्वक जीवन बिता सकने की शिक्षा देना गुरुकुलों का चरम लक्ष्य था। प्राचीन काल में यह कार्य आजकल के शब्दों में एक 'सायन्स' का महत्व रखता था, इसके लिए बड़े-2 मस्तिष्क दिन रात लगे रहते थे। ऋषियों ने जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्न का एक हल निकाला था वह था 'ब्रह्मचर्य'। उनके गुर बड़े सरल थे परन्तु ब्रह्मचर्य के भावों से पुर थे। वे कहते थे- 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत'-ब्रह्मचर्य के तप से देवताओं ने मृत्यु पर विजय प्राप्त किया। ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः ब्रह्मचर्य के स्थिर रखने से शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक बल प्राप्त होता है मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात विन्दु पात में जीवन का नाश तथा बिन्दुरक्षण में जीवन की रक्षा है। कैसे छोटे-2 संस्कृत के सुन्दर टुकड़े हैं परन्तु इन्हीं में जीवन को विकट समस्याओं के कैसे जीवन-शास्त्र तथा शरीर शास्त्र के महत्व पूर्ण हल भरे हुए हैं।

ऋषियों की बुद्धीमत्ता

ऋषियों ने ब्रह्मचर्य के प्रश्न पर पूरा-2 विचार कर लिया था। सदाचार का जीवन किस प्रकार व्यतीत किया जा सकता है इसकी उन्होंने पूरी खोज की थी और उसी के आधार पर ब्रह्मचर्य के नियमों को घड़ा था। ब्रह्मचर्य रक्षा के नियम अत्यन्त सरल तथा सर्वविदित हैं। उन सबका यहां स्थानाभाव से विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता। इस प्रकरण में हम यही दर्शाने का प्रयत्न करेंगे कि ऋषियों, मुनियों ने ब्रह्मचर्य के लिए जिन नियमों का प्रतिपादन किया है, यद्यपि वे साधारण दृष्टि से मामूली से जान पड़ते हैं तथापि उनमें मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त कार्य कर रहे हैं। उनकी आज्ञाएं वर्तमान परीक्षणों, वैज्ञानिक गवेषराओं तथा सार्वभौम अनुभवों से भी पूर्णतया सिद्ध होती हैं।

-(शेष अगले अंक में)

मनुष्य का मनुष्यत्व

लेखकः–बाबू सूरजभान वकील

मनुष्य जाति का पशु जीवन से उन्नति करते-करते मनुष्यत्व प्राप्त करने का पूर्वोक्त वर्णन मालूम हो जाने पर यह बात सहज ही समझी जा सकती है कि मनुष्यों को अपना मनुष्यत्व कायम रखने और आगे को उसे अधिकाधिक उन्नत करने के लिए कौन-कौन से कर्त्तव्य पालन करने चाहिए। क्योंकि जिन सब बातों की बदौलत मनुष्य को अपने जीवन-निर्वाह की अनेक उपयोगी वस्तुएँ प्राप्त होने लगीं, तथा जिनकी बदौलत उसका जीवन पशु जीवन से सर्वथा भिन्न होकर अत्यन्त सुखमय तथा परम श्रेष्ठ बन गया, उन सब बातों की रक्षा करना और उनको उन्नत बनाना मनुष्य-जीवन का मुख्य कर्त्तव्य है-और उनसे ही उसके मनुष्यत्व की रक्षा हो सकती है। उक्त बातों को हम तीन श्रेणियों में विभक्त करते हैं-

(1) <u>विचारशक्ति–</u> जिसके द्वारा मनुष्य अपनी उन्नति और सुखशान्ति के बढ़ाने वाले नवीन उपायों को खोजता और प्राचीन असुविधाजनक तरीकों को छोड़ता जाता है।

(2) <u>वचनशक्ति–</u> जिसके द्वारा बालकों तथा नवयुवकों को अपने से बड़े तथा अनुभवी पुरुषों की जानी बूझी हुई बातें मालूम होती रहती है, और आगे चलकर जब ये ही बालक तथा नवयुवक सयाने होते हैं या पितृपद को पाते हैं तब वे अपने पूर्वजों की सुनी हुई और अपनी बुद्धि तथा अनुभव से प्राप्त की हुई बातों को अपने बच्चों को सुनाते या सिखाते हैं। इस प्रकार इस बातचीत करने की शक्ति की बदौलत मनुष्य उन सब लोगों की खोजी हुई बातों को जानता रहता है कि जो उससे सैकड़ों-हजारों पीढ़ी पहले उत्पन्न हुए थे। नवीन लोग प्राचीन लोगों के अनुभव से जानी हुई बातों में अपनी बुद्धि को लड़ाकर कुछ और आगे सरकते हैं और इस तरह उनसे भी बढ़िया बातें खोज निकालते हैं। इसके सिवा इस वचनशक्ति की बदौलत मनुष्य अपने समकालीन लोगों से भी बातचीत करता है और इस प्रकार नये पुराने सभी मनुष्यों के अनुभव को इकट्ठा करके वह बहुत बड़ा ज्ञानी बनता चला जाता है। यदि मनुष्य में बातचीत करने की शक्ति न होती तो वह न तो उन लोगों के ही अनुभवों को जान सकता जो उससे पहले हो गये हैं, और न वह अपने समकालीन मनुष्यों के अनुभवों को ही जान सकता। ऐसी अवस्था में उसकी बुद्धि को बाहर से कुछ भी सहायता न मिलती और वह जरा भी उन्नति न कर सकता, अपनी एक ही दशा में उसी तरह पड़ा रहता जिस तरह कि सब पशुपक्षी पड़े हुए हैं। परन्तु इस वचनशक्ति बदौलत उसे नवीन तथा प्राचीन सभी लोगों का ज्ञान-भंडार मिलता रहता है और इसीलिए वह बहुत शीघ्रता के साथ आगे बढ़ता जाता है। इसी वचनशक्ति बदौलत वह अपनी बनाई हुई वस्तुओं से दूसरों की बनाई हुई वस्तुओं का परिवर्तन करता, दूसरों की रक्षा और सहायता करता तथा दूसरों से अपनी रक्षा या सहायता कराता और अपने मनोगत भाव दूसरों से अपनी रक्षा या सहायता कराता और अपने मनोगत भाव दूसरों पर प्रकट

रक्षा या सहायता कराता और अपने मनोगत भाव दूसरों पर प्रकट करता तथा दूसरों के भाव आप जानता है।

(3) **पारस्परिक सहायता–** अर्थात् आपस में मिल जुलकर रहना, एक दूसरे की चीजों से बदला करना, एक दूसरे के धन जन और अधिकारों की रक्षा करना और सहायता देना। अगर ये बातें न हों तो एक मनुष्य अपनी अकेली बुद्धि और वचनशक्ति से कुछ भी नहीं कर सकेगा, बल्कि इनके बिना उसका जीवन–निर्वाह ही कठिन और रुद्ध हो जायेगा।

इस प्रकार ये तीन बातें ऐसी हैं जिन्होंने मनुष्य को मनुष्य बनाया है। इसलिए उसका मनुष्यत्व और परम कर्त्तव्य यही है कि सदैव इन तीनों बातों में उन्नति करता रहे, उनको सदैव उचित रीति से काम में लावे और उनका कभी दुरुपयोग न करे। इन शक्तियों के दुरुपयोग अथवा बुरी तरह काम में लाने की बात हमने इसलिए कही है कि इनके द्वारा हानि और लाभ दोनों हो सकते हैं। यदि हम शक्ति का सदुपयोग करें अर्थात् उसे अच्छे काम में लगावें तो उससे हमको लाभ होगा, और यदि हम उसका दुरुपयोग करें–उसे बुरे काम में लगावें तो उसके द्वारा हमें हानि पहुँचेगी। जैसे आग से रोटी बनाई जावे, या लोहा, पीतल आदि गलाकर बर्तन बनाये जावें, या सोना चाँदी गलाकर जेबर या सिक्के बनाये जायँ, या एंजिन बनाकर उससे रेलगाड़ियाँ और अनेक तरह के कारखाने चलाये जायँ, तो हम कहेंगे कि आग का सदुपयोग किया गया है और उससे लाभ ही की संभावना होगी, परन्तु यदि उसी आग के द्वारा लोगों के घर जलाये जायँ, बन्दूक अथवा तोप के द्वारा गोले फेंककर मनुष्यों का नाश किया जाय तो यह उसका दुरुपयोग कहलावेगा और उससे हानि ही हानि होगी।

मनुष्य को अपना मनुष्यत्व स्थिर रखने के लिए, अपना मानवी कर्त्तव्य पालन करने के लिए, अपनी इन तीनों शक्तियों का सदुपयोग करना चाहिए। यही नहीं, बल्कि हजारों लाखों–वर्षों से मिलने वाले मनुष्यों के अनुभवजन्य ज्ञान–भण्डार का ऋण चुकाने के लिए जहाँ तक हो सके उसे स्वयं भी कुछ उन्नति करके दिखलानी चाहिए या कोई नवीन वस्तु बनानी चाहिए, पुरानी तर्कीबों, पुरानी कारीगरियों और पुरानी रीतियों से बढ़िया कोई नवीन तर्कीब कारीगरी या रीति निकालकर उसे सर्वसाधारण में प्रकट करनी चाहिए। इन नई–नई खोजों या तर्कीबों को छिपाना मानों मनुष्य जाति की उन्नति मार्ग में बाधा पहुचाना है। परन्तु अपनी बुद्धि को कभी ऐसी बातों के सीखने सिखाने या ऐसी किसी बात या तर्कीब के निकालने में न लगानी चाहिए जिससे मनुष्य जाति की हानि होती हो या मनुष्य के मनुष्यत्व में फर्क आता हो। जिन देशों में जब तक इस प्रकार नवीन–नवीन उत्तम रीतियाँ निकलती रहीं, तब तक वे देश उन्नति करते रहे, और अन्य देशों के सिरताज बने रहे, परन्तु जब उन्होंने इस प्रकार आगे को सरकना छोड़ दिया, और पुरानी रीतियों को पकड़कर बैठ रहे, तब वे अन्य उन्नतिशील देशों के अधीन बन गये। अर्थात् जो लोग पुरानी कमाई के भरोसे न बैठकर नई–नई बातों की खोज करते हुए आगे बढ़ते रहते हैं, संसार में उन्हीं की तूती बोलती है।

मनुष्य अपनी वचनशक्ति की बदौलत ही यह सब उन्नति करने में समर्थ हुआ है और आगे को करता जाता है, अतएव उसे उचित है कि वह इस शक्ति का उपयोग सदैव मनुष्य मात्र के लाभकारी कामों में ही करे। मनुष्यों ने अपने विचार दूसरों पर प्रकट करने के लिए एक और तर्कीब निकाली है और वह तरकीब लिखने की है। इससे भी वे उसी प्रकार काम लेने लगे हैं जिस प्रकार कि मुंह के द्वारा बोलकर बल्कि इस लिखने की तरकीब के द्वारा वचनशक्ति की अपेक्षा अधिक उन्नति हुई, क्योंकि मुंह के द्वारा हम अपने मन के विचार उन्हीं लोगों पर प्रकट कर सकते थे जो हमारे पास होते थे, परन्तु लिखने की तरकीब से हम अपनी बातें हजारों-लाखों मीलों की दूरी पर भी पहुँचाने में समर्थ हुए हमारे लिखित अनुभवों तथा समस्त ज्ञान का लाभ हमसे बहुत पीछे पैदा होने वालों लोगों को भी होने लगा। इस लेखन-कला की विधि को और भी उन्नत बनाने के लिए लोगों ने छापने की तरकीब निकाली कि जिसके द्वारा धड़ाधड़ लाखों करोड़ों पुस्तकें छपने लगीं। इस प्रकार बहुत थोड़े श्रम से बड़े-बड़े विद्वानों के विचार सबको विदित होने लगे। इसके सिवा तार, टेलीफोन, बिना तार का तार, आदि अनेक प्रकार की तरकीब निकाली गईं और मनुष्य बुद्धि की गंभीर खोज से और भी निकलती चली जा रही है। कहने का मतलब यह है कि अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने की कला में जितनी उन्नति की जायगी मनुष्यों की भी उतनी ही उन्नति होगी। अतएव मनुष्य को नये पुराने और सुदूरवर्ती लोगों के विचारों को जानने के लिए सब प्रकार की पुस्तकें पढ़नी चाहिए और अपने विचारों तथा अनुभवों को लिखकर सर्व साधारण में प्रकट करना चाहिए। ऐसा करने से ही वह अपनी तथा अपनी भविष्यत् में होने वाली संतान की भलाई कर सकता है।

परन्तु मनुष्य को नवीन चीजें बनाने, नवीन तरकीबें सोचने और वचनशक्ति को काम में लाने के लिए बड़ी सावधानी की जरूरत है। क्योंकि जो शक्ति जितनी अधिक बलवान् होती है और जितना अधिक लाभ पहुँचाती है, वह विपरीत हो जाने या उल्टी रीति से काम में लाई जाने पर उतना ही अधिक नुकसान भी पहुँचाती है। उदारहणार्थ-हाँकने वालों की असावधानी से यदि दो बैल गाड़ियाँ आपस में लड़ जावें तो उसमें बैठे हुए दो चार मुसाफिरों को ही चोट आयेगी और यह चोट भी सांघातिक नहीं, साधारण ही होगी। परन्तु यदि ड्राइवर की असावधानी से दो रेलगाड़ियाँ आपस में लड़ जायँ तो सैकड़ों-हजारों आदमियों की मौत हो जायेगी; उनकी हड्डियों-पसलियों तक का पता न चलेगा। इसी प्रकार नवीन आविष्कार और बातचीत करने की शक्तियाँ भी ऐसी ही महान् शक्तियाँ हैं कि जिन्होंने मनुष्य के रहन-सहन और जीवन-निर्वाह का एक बिलकुल विलक्षण और अद्‌भुत ढाँचा खड़ा कर दिया है और भविष्यत में भी जिनकी बदौलत मनुष्य अपने जीवन-निर्वाह का नये से नया नक्शा बनाता जाता है। अतएव इन शक्तियों को बहुत सावधानी के साथ उपयोग में लाने की आवश्यकता है, नहीं तो यही शक्तियाँ मनुष्य का सर्वनाश करने की ताकत भी रखती है। जो लोग इनका दुरुपयोग करते हैं उनका विषमय फल भी तत्काल ही पा लेते हैं।

इस विषय में सबसे भारी कठिनाई की बात यह है कि मनुष्य नवीन-नवीन बातें निकालने की

बुद्धि और विवेकशक्ति के होते हुए भी उसके हृदय में पशुओं के सामन क्रोध, मान, माया लोभ का आवेग भी भरा हुआ है कि जिसके बढ़ जाने या भड़क उठने से वह अपनी विवेक बुद्धि को त्यागकर आपे से बाहर हो जाता है, और जान बूझकर ऐसे काम करने के लिए उद्यत हो जाता है कि जिनसे उसकी प्रत्यक्ष हानि होती है। बहुधा क्रोध से भरे हुए लोगों के मुँह से ऐसा कहते हुए सुना जाता है, कि चाहे मेरा घर मिट्टी में क्यों न मिल जाय, परन्तु मैं अपने बैरी को खाक में मिलाकर ही छोडूँगा; चाहे मेरी फाँसी क्यों न लग जाय परन्तु मैं अमुक आदमी की एक बार भरे बाज़ार इज्जत बिगाड़े बिना न रहूँगा। इस प्रकार क्रोध में आकर मनुष्य न जाने क्या-क्या कहता है और केवल कहता ही नहीं, कभी-कभी कर भी बैठता है कि जिसका पीछे उसे बहुत पछतावा होता है। इसी प्रकार अपनी इज्जत के ख्याल में इस देश के लोग अपने लड़के लड़कियों के विवाह में अपना सर्वस्व लुटाकर भिखारी बन जाते हैं और अपनी प्रिय संतानों के सिर पर ऋण का इतना भारी बोझा छोड़ जाते हैं कि वे फिर अपनी उमर भर सिर नहीं उठा पाते हैं और न किसी मान के योग्य ही रह जाते हैं। ऐसे ही लोभ और माया के वशीभूत होकर भी लोग ऐसा ही काम कर बैठते हैं कि जिससे उनकी बनाई साख इज्जत बिगड़ जाती है, और कभी-कभी तो उनका सब कारोबार बंद हो जाता है और उन्हें जेलखाने की हवा तक खानी पड़ती है।

मतलब यह है कि क्रोध, मान, माया लोभ, आदि मन के उफान ऐसे प्रबल हैं जो असावधान मनुष्य को बिलकुल बेकाबू कर देते हैं और उससे विपरीत काम कराने लगते हैं। जैसे आँखों पर हरे रंग का चश्मा लगाने से सब वस्तुएँ हरी-हरी दिखाई देने लगती हैं और पीले रंग का चश्मा लगाने से सब तरफ पीला ही पीला दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार क्रोध, मान, माया लोभ, आदि कषायों के जोश से भी मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और कर्त्तव्यों को त्यागकर वह अपनी बुद्धि को उन कामों की ओर झुका देता है कि जिससे उसके मन की भड़क पूरी होती है। कभी-कभी तो वह अपने मन की भड़क को पूरी करने में इतना बेसुध और उन्मत्त हो जाता है कि चाहे उसके तमाम काम बिगड़ जावें-चाहे सारी दुनिया रसातल को चली जाय, परन्तु उसकी वह भड़क पूरी होनी ही चाहिए। इसीलिए असावधान और कषायी मनुष्य अपनी अनेक प्रकार की प्रबल इच्छाओं और हृदय की उमंगों को पूर्ण करने के लिए उपरिलिखित महान्-महान् शक्तियों को भी इसी ओर लगा देता है और झूठ, फरेब, धोखेबाजी, जालसाजी, मक्कारी आदि बुरे मार्गों में ही अपनी उक्त शक्तियों को व्यय करने लगता है। परिणाम यह होता है कि वह सारे संसार के लोगों से मेल-जोल रखने, उनके जान माल की रक्षा करने और सुख-शान्ति बढ़ाने के बदले उनको नुकसान पहुँचाने, उनका हक छीनने, माल उड़ाने, चोरी डकैती करने और पराई स्त्रियों की ओर कुदृष्टि देखने आदि बुरे-बुरे कामों में फँस जाता है और इन कामों में सफलता प्राप्त करने में वह अपना परम सौभाग्य और कर्तव्य समझने लगता है। परन्तु ऐसा करने से वह मनुष्यत्व के ढाँचे में बड़ी भारी खलबली पैदा कर देता है और पारस्परिक विश्वास को खोकर आपस में मिल-जुलकर रहने के अत्युत्तम प्रबंध को शिथिल बनाता है। ऐसे-ऐसे विपरीत कामों से मनुष्य समाज में अपने पद से भ्रष्ट होकर केवल नीचे ही को नहीं आता, किन्तु वह पतित होकर नष्ट हो जाता है और किसी योग्य भी नहीं रहता।

-(शेष अगले अंक में)

आर्यवीरो ! उठो

(1)

भारत से लेकर यूरोप तक, जितना भूमी तल विस्तार।
आंख उठाकर जरा निहारो, मचा भयानक हाहाकार॥
रंक कुटी में धनिक भवन में, जहां कहीं पर जाते हैं।
वाह्य सुखाडम्बर के भीतर, दुःख कथा सुन पाते हैं॥

(2)

नास्तिकता दावानल फैली, चित्त लता कुम्हलाती है।
ईश भक्ति की शीतल गंगा, सूखी हुई लखाती है॥
बढ़ी हुई धन तृष्णा जग में, विकट अनर्थ मचाती है।
त्याग वृत्ति का नाम नहीं है, पर सेवा सकुचाती है॥

(3)

चण्डी रण देवी भी अपना, भैरव नृत्य दिखाती है।
पाप भरे विध्वंस कर्म का, भीषण काण्ड सिखाती है॥
दीन अमीरों के नित झगड़े, धनिक जनों के अत्याचार।
टूट गई वर्णाश्रम सीमा, हुआ मोह मद का संचार॥

(4)

देखो जहां वहीं व्याकुलता, जगती तल पर छाई है।
स्वार्थवृत्ति का राज्य बढ़ा है, प्रेम लता मुरझाई है॥
ऐसे कष्ट समय में भारत, सुख निद्रा क्यों सोता है।
आर्य जाति का करुण हृदय क्यों, स्वार्थ परायण होता है॥

(5)

विपद पंक में जब जब महि को, चक्र निमग्न निहारा था।
तब तब देकर हाथ सहारा, भारत ने उद्धारा था॥
आज हजारों वर्ष हुये जब, जग में संकट छाया था।
बुद्धदेव का जन्म हुआ तब, करुणामृत बरसाया था॥

(6)

प्राणि मात्र का था वह बन्धू, दयासिन्धु कहलाता था।
दुःख देखकर दारुण जग का, हार्दिक अश्रु बहाता था॥

त्यागी राज पाट की इच्छा, किये निछाबर अपने प्राण।
दिया अनाकुल मोक्ष संदेशा, फैलाया जग में कल्याण॥

(7)

दिनके दीप्ति निकर के पीछे, गाढ़ निशा तम आता है।
पाप निशाचर फिर दुखदाई, अपना राज्य जमाता है॥
इसके विकट अनाचारों से, जगती तल अकुलाता है।
पर देखो तो पूर्व निशा नभ, नूतन झलक दिखाता है॥

(8)

दयानन्द नामी सेनापति, धर्मराज का आया है।
नभ तल में फिर मंगलकारी, धर्म केतु फहराया है॥
सच्छाओं के शस्त्र हाथ में, दिव्य तेज का था आधान।
धर्म विजय की मन में इच्छा, दिया लड़ाई का ऐलान॥

(9)

कठिन शिलातल सम बाहर से, भीतर करुणा का अवतार।
देख पाप से पीड़ित जग को, पकड़ी शान्तिमयी तलवार॥
लड़ा पाप से वह संन्यासी, किया अविद्या का संहार।
विजय वैजयन्ती उड़ती है, उस मुनि की, लो मित्र! निहार॥

(10)

उसी वीर के तुम सैनिक हो, सुनो वीर ऋषि मुनि सन्तान।
चरण चिन्ह पर उसी एक के, चलने से होगा कल्यान॥
शस्त्र सँभालो अपने वीरो, करो युद्ध की तैयारी।
महा मोह राजा की सेना, पड़ी जीतने को भारी॥

(11)

क्रूर युद्ध का दृश्य नहीं है, शान्ति राज्य को लाना है।
रुधिर नदी की बाढ़ रोककर, प्रेम सुधा वरसाना है॥
गले पराये नहीं कटेंगे, शिर अपना कटवाना है।
लोक राज्य की इच्छा छोटी, स्वर्ग राजपद पाना है॥

(12)

परम पिता के सब पुत्रों में, भ्रातृ-भाव फैलाना है।
धर्म युद्ध का दृश्य अनूठा, हमें आज दिखलाना है॥

दूर दूर देशों में वीरो ! शान्ति संदेशा देना है।
विषम विघ्न बाधानल को भी, सहज पार कर लेना है॥

(13)

भूत दया के भाव हृदय में, जिनके विकसित होते हैं।
बढ़ें आज व वीर अगाड़ी, समय वृथा क्यों खोते हैं॥
व्याकुल पृथ्वी तल यह सारा, सत्य धर्म का प्यासा है।
उठो वीर भारत सन्तानों, हमें तुम्हीं पर आशा है॥

❀❀❀

महापुरुषों की जयन्ती

डॉ0 राजेन्द्रप्रसाद	3 दिसम्बर
सी0 राज गोपालचारी	10 दिसम्बर
गुरु गोविन्दसिंह	22 दिसम्बर
श्रीनिवास अयंगर	22 दिसम्बर
शहीद उधमसिंह	26 दिसम्बर

झण्डा दिवस	*7 दिसम्बर*
विजय दिवस (भारत पाक युद्ध)	*16 दिसम्बर*
क्रिसमिस डे (बड़ा दिन)	*25 दिसम्बर*

महापुरुषों की पुण्यतिथि

सन्त ज्ञानेश्वर	1 दिसम्बर
गुरु तेगबहादुर	1 दिसम्बर
डॉ0 बाबासाहेब अम्बेडकर	6 दिसम्बर
पं0 रामप्रसाद बिस्मिल	19 दिसम्बर
अश्फाक उल्लाखान	23 दिसम्बर
रोशनसिंह	23 दिसम्बर
स्वामी श्रद्धानन्द	23 दिसम्बर
सी0 राज गोपालचारी	25 दिसम्बर

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

सत्य प्रकाशन के पुनः प्रकाशित उपलब्ध प्रकाशन

वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	मूल्य 40)
बाल सत्यार्थ प्रकाश	मूल्य 30)
यज्ञमय जीवन	मूल्य 30)
मील का पत्थर	मूल्य 20)
भ्रांति दर्शन	मूल्य 20)
दयानन्द और विवेकानन्द	मूल्य 15)
बाल मनुस्मृति	मूल्य 12)
इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	मूल्य 12)
ओंकार उपासना	मूल्य 12)

ब्रह्मचर्य-विज्ञान

लेखकः-जगन्नारायणदेव शर्मा

ब्रह्म-वन्दना

य अत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते, प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः, कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

-(यजु0 अ0 25 मं0 13)

जो आत्मज्ञान तथा शारीरिक बल का देने वाला है-जिसकी सभी लोग उपासना करते हैं-विद्वान् पुरुष जिसे प्राप्त करते हैं-जिसका आश्रय अमृत (दीर्घ जीवन) देने वाला है, और जिसके अधिकार में मृत्यु है-हम उस दिव्य स्वरूप का ध्यान करते हैं। किसी भी महत्वपूर्ण कार्य के प्रारम्भ में उस की समाप्ति के लिये, वन्दना एक आवश्यक तथा शिष्टाचार से सम्बन्ध रखने वाला वैदिक नियम है। अत: हमने भी इस आर्य-धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ को उपादेय बनाने की इच्छा से मांगलिक प्रार्थना की है।

ऊपर के मन्त्र में ईश्वर-विनय तो हुई है, पर हमारे विचार से इसमें 'ब्रह्मचर्य' की ओर गुप्त रूप से संकेत भी किया गया है। उसका आशय निम्नलिखित है-

ब्रह्मचर्य से ही मनुष्य का मानसिक ज्ञान स्फुरित होता है। उसके शारीरिक बल का भी सर्वोत्कृष्ट साधन ब्रह्मचर्य ही है। सभी लोग ब्रह्मचर्य को श्रेष्ठ मानकर उसकी प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। बुद्धिमानों को ब्रह्मचर्य अत्यन्त प्रिय होता भी है। ब्रह्मचर्य से ही मनुष्य दीर्घायु प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मचर्य से ही मृत्यु दूर भगाई जा सकती है। इसलिये इस पवित्र वैदिक प्रार्थना में कहे गये 'ब्रह्मचर्य-रूप भगवान' को हृदय में धारण करना योग्य है।

ब्रह्मचर्य की व्याख्या

'ब्रह्मचर्य' के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रकट करने से पहले यह समझा देना अत्यन्त आवश्यक है कि ब्रह्मचर्य है क्या पदार्थ? जब तक इसके अर्थ नहीं बताये जायेंगे, तब तक उसके गूढ़ भावों के समझने और समझाने में, पाठक और लेखक-दोनों को समान रूप से असुविधा होगी।

एक बात यह भी है कि जो वस्तु व्याख्या-द्वारा पहले पहल स्पष्ट नहीं कर दी जाती, उसके विषय में किये गये विचार भली भांति हृदयंगम नहीं किये जा सकते। अत: 'ब्रह्मचर्य' किसे कहते हैं? यह बतलाना होगा।

वास्तव में 'ब्रह्मचर्य' एक शब्द नहीं, यह दो शब्दों के योग से बना है। एक 'ब्रह्म' दूसरा 'चर्य'-इस प्रकार तो ब्रह्म और चर्य-इन दोनों शब्दों के भिन्न-भिन्न स्थानों पर, अनेक अर्थ होते हैं। हम पाठकों के हितार्थ कुछ को नीचे लिख देते हैं-

'ब्रह्म'-इस शब्द से ईश्वर, वेद, वीर्य, मोक्ष, धर्म, सूर्य, ब्राह्मण, गुरु, सुख, योग, सत्य, आत्मा, मन्त्र, अन्न, द्रव्य, जल, महत्व, साधन और ज्ञान आदि का और 'चर्य'-इस शब्द से चिन्तन, अध्ययन, रक्षण, विवेचन, सेवा, नियम, उपाय, हित, ध्येय, प्रगति, प्रसार, संयम, साधना और कार्य आदि का बोध होता है।

'ब्रह्मचर्य' बहुत प्राचीन एवं प्रभावोत्पादक शब्द है। इसके बहुत से अर्थ हो सकते हैं, जिन्हें हम ऊपर

दे चुके हैं, पर हमारे वैदिक साहित्य में इसके तीन ही प्रधान अर्थ होते हैं। हमने जहाँ कहीं देखा है, इन्हीं तीनों अर्थों को ध्यान में रखकर, इस शब्द का प्रायः व्यवहार हुआ है। प्रायः उन्हीं अर्थों को लक्ष्य में रखकर, हमारा यह ग्रन्थ भी लिखा जा रहा है। अतएव हम उन्हें पृथक् नीचे स्पष्ट कर देते हैं–

'ब्रह्म' शब्द वीर्य, वेद और ईश्वर वाचक है। और 'चर्य' रक्षण, अध्ययन तथा चिन्तन का द्योतक है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य के ये तीन प्रधान अर्थ समझे जाने चाहियें। 1–वीर्य–रक्षण, 2–वेदाध्ययन, 3–ईश्वर–चिन्तन। पृथक्–2 तो तीन अर्थ हुये, पर तत्वतः वे तीनों ही एक मूलभूत 'ब्रह्मचर्य' में सन्निहित हैं।

'ब्रह्मचर्य' का पहला अर्थ हमने 'वीर्य–रक्षण' किया है। यह अर्थ प्राचीन समय से जनता में रूढ़ि को प्राप्त हो गया है। ब्रह्मचर्य का नाम लेते ही लोगों के हृदय में वीर्य रक्षण का भाव उठता है। यह साधन–रूप से अब भी संसार में प्रतिष्ठित है।

'ब्रह्मचर्य' का दूसरा अर्थ हमने 'वेदाध्ययन' किया है। यह अर्थ वीर्य–रक्षण के साथ ही प्रचलित था। 'ब्रह्मचर्य' की अवस्था में वेदाध्ययन एक प्रधान कार्य समझा जाता था। अब भी विद्योपार्जन में प्रणाली किसी न किसी रूप में सर्वत्र प्रचलित है ही।

'ब्रह्मचर्य' का तीसरा अर्थ हमने 'ईश्वर–चिन्तन' किया है। यह भी प्राचीन काल में उद्देश्य–रूप से माना जाता था। वीर्य–रक्षण और वेदाध्ययन की परिपाटी के साथ ही ईश्वर–चिन्तन भी होता था। अब भी लोग देवाराधन करते हैं।

'ब्रह्मचर्य' में वीर्य–रक्षण, वेदाध्ययन और ईश्वर–चिन्तन–इन तीनों बातों की सिद्धि होती है।

अर्थात् एक साथ वीर्य–रक्षण करने, वेदाध्ययन करने तथा ईश्वर–चिन्तन करने का नाम 'ब्रह्मचर्य' है। इन्हीं तीन महत्वशाली प्रयोजनों के एकत्र किये हुये भाव से 'ब्रह्मचर्य' शब्द की संसार में उत्पत्ति हुई है।

अब हम ऊपर कहे गये तीन प्रयोजनों के समूह–रूप 'ब्रह्मचर्य' को आगे बतलावेंगे। हमने जिन आधारों पर ऊपर के अर्थ किये हैं, वे भी नीचे लिखे जाते हैं–

कठोपनिषद्–

"तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म, तदेवामृतमश्नुते।"

अर्थात् वही वीर्य है–वही परमात्मा है और वही अमृत कहलाता है।

यजुर्वेद–

"तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म, ता आपः स प्रजापतिः।"

अर्थात् वही वीर्य है–वही ईश्वर है–वही जीवन है, और वही सृष्टि–कर्त्ता भी है।

ऐतरेयोपनिषद्–

"प्रज्ञानं वै ब्रह्म।"

अर्थात् वेद साक्षात् परमेश्वर है।

मनुस्मृति–

"ब्रह्मभ्यासेन चाजस्रमनन्तसुखमश्नुते।"

अर्थात् वेद के सदैव अध्ययन करने से अपरिमित सुख मिलता है।

कैवल्योपनिषद्–

"यत्परब्रह्म सर्वात्मा, विश्वस्यायतनं महत्।"

अर्थात् जो परब्रह्म है- सर्वात्मना है, और संसार का श्रेष्ठ धाम है।

वेदान्तदर्शन–

"अथातो ब्रह्म–जिज्ञासा।"

अर्थात् अब हम परमात्म–तत्व की विवेचना करते हैं।

ऊपर के अवतरणों से पाठक समझ गये होंगे कि 'ब्रह्म' से वीर्य, वेद और ईश्वर का बोध होता है। ब्रह्मचर्य–व्याख्या–कहने का अभिप्राय यह है कि वीर्य, वेद और ईश्वर का–रक्षण, अध्ययन तथा चिन्तन ही 'ब्रह्मचर्य' है। इन तीनों में से एक भी कम हुआ, तो 'ब्रह्मचर्य' की सम्पूर्णता नहीं प्राप्त हो सकती।

ब्रह्मचर्य के आविष्कारक

गायन्ति देवाः किल गीतकानि–
धन्यास्तु ये भारत–भूमि–भागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतु–भूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।। –(श्रीमद भागवत)

यह वही महत्वशाली महादेश है, जहाँ की सभ्यता अपने अलौकिक गुणों के कारण, एक बार उन्नति की चरम–सीमा को पहुँच गई थी। यह वही पुण्य–प्रधान भूमि है, जहाँ का अन्तिम आलोक ग्रहण कर आधुनिक सभ्य तथा उन्नत कहलाने वाले देशों के निवासी, विश्व में अपनी विजय–वैजयन्ती उड़ा रहे हैं। वास्तव में हमारे उस गौरव–गरिमामय वैभव–विकास के आश्रय–भूत, इस देश में रहने वाले, परम स्वार्थत्यागी और त्रिकालदर्शी ऋषि, मुनि तथा महात्मा लोग थे, जो उच्च पर्वतों की कन्दराओं और हरे–भरे वनों की कुटियों में बसकर, समस्त मनुष्य–जाति के लिये हितकर, एवं सुख–शान्तिमय उपाय सोचा करते थे। उनके सत्सिद्धान्त कोरी कल्पना की अरक्षित भित्ति पर ही नहीं ठहरते थे, वरन् वे आदर्श विज्ञान की खरी कसौटी पर सुदृढ़ अभ्यास द्वारा कसे जाकर ही जनता में प्रचलित किये जाते थे। यही एक मुख्य कारण था कि उनके अनुगमन से प्रजा सदा फूलती–फलती रही। उन्होंने सामाजिक जीवन को नियम–बद्ध किया। ईश्वर की सत्ता को स्थिर रखने के लिये तथा मानवी–सुष्टि को कुमार्ग–गामिनी होने से बचाने के उद्देश्य से, अनेक शास्त्रों की रचना की, और उनमें अनेक अमूल्य, उच्च तथा स्वाभाविक विधान किये। उन्होंने स्वभाव–सिद्धि ब्राह्मणादि चार वर्णों और ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमों की योजना की। जैसे वर्णों में ब्राह्मण, वैसे आश्रमों में ब्रह्मचर्य को प्रथमता और श्रेष्ठता का स्थान मिला। इस रहस्य–पूर्ण प्रणाली को हम उनके सर्वतोभद्रमस्तिष्क और दिव्य–दृष्टि का सबसे बड़ा उत्पादन मानते हैं। संसार की प्राथमिक अवस्था में, वास्तव में, यह उनकी अपूर्व योग्यता थी। अतएव ब्रह्मचर्य के मूल आविष्कारक, इसी देश के प्राचीन महात्मा तथा दूरदर्शी देव–तुल्य पुरुष थे। इन्हीं के कारण कई शताब्दियों तक ब्रह्मचर्य–प्रथा का प्रचार धार्मिक रूप से भारत में ही क्या, समस्त भूमण्डल में उत्तरोत्तर बहुत दिनों तक बढ़ता गया।

काल के प्रभाव से उस सुवर्ण–युग का अन्त हो गया। भारत में आज वे महर्षि तथाा सिद्ध लोग नहीं रहे, पर जिस कल्याणप्रद मार्ग को दिखला गये, वह इस पतित समय में भी उनका स्मरण दिलाता है। यदि हम अपनी अज्ञानता और अभिमान को छोड़कर, उनकी बातों पर विश्वास और प्रेम कर, ब्रह्मचर्य–प्रणाली को पुनः उसी रूप में प्रचलित करें, तो वास्तव में हम फिर भी उनकी आत्मा को दर्शन नवीन शरीर में कर सकते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि ब्रह्मचर्य के प्रभाव से भविष्य में हम भी वैसे ही आविष्कारक तथा सत्पुरुष हो सकेंगे। ❁

यह दीन दशा संसार की देखकर उसका ज्ञान रखने वाले और इसी का नित्य दर्शन करने वाले और उसी में अपने आपकी स्थिति समझने वाले ज्ञानियों के हृदय में करुणा रस की मूर्त्ति बन जाते हैं। तब वे अपने गिरे हुए भाईयों को उठने के लिए ज्ञान के बाहु पसार देते हैं। भाईयों की उठाने की प्रबल इच्छा भी है उसके लिए प्रयत्न भी है। किन्तु ज्ञान बाहु अशक्त सिद्ध होते हैं उठने के स्थान पर वे गिरे हुए आत्मा उस ज्ञान रूपी बाहु को खींचने लगते हैं। उस समय सरस्वती का विकास होता है और इसकी प्रदान की हुई अमृत धारा को स्रोत खुल जाता है। मरते हुओं को जीवन का आनन्द आ जाता है और वे अपने उठाने वाले ज्ञानी बड़े भाई को स्वयं उठने में सहायता देते हैं और तब भाई-भाई के हाथ में डाल दिये जीवन से भरपूर होकर कहते हैं-

श्रुति मात्र रसः सूक्ष्मा प्रधान पुरुषेश्वरः।
श्रद्धा मात्रेण गृह्यन्ते न करेण न चक्षुषा।
श्रद्धा विधि समायुक्तः धर्म यतिक्रियते नृभिः।
सः विशुद्धेन भावेन तदानन्त्याय कल्पते।

यह दीन दशा संसार की देखकर उसका ज्ञान रखने वाले तथा उसी में अपने आपकी स्थिति समझने वाले ज्ञानियों के हृदय करुणा रस की मूर्ति बन जाते हैं। तब वे अपने गिरे हुए भाईयों को उठाने के लिए ज्ञान के बाहु पसार देते हैं। वह ज्ञान हाथ या आँखों से प्राप्त नहीं होता अपितु उस ज्ञान को मात्र हम श्रद्धा मात्र से ग्रहण कर सकते हैं और इस श्रद्धाविधि से युक्त जो भी काम मनुष्यों के द्वारा किये जाते हैं। निश्चित यही श्रद्धा भाव उनके सारे कष्टों का अन्त करने वाला होता है। ❁

पाठकों से नम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2014 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2015 के वार्षिक शुल्क के साथ शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका व विशेषांक सुचारू रूप से आपको प्राप्त होते रहें।

-व्यवस्थापक

शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें

श्रीमद् भगवद् गीता (एक सरल चिन्तन)	प्रेस में
चार मित्रों की बातें	प्रेस में
गृहस्थ जीवन रहस्य	प्रेस में
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	प्रेस में

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (प्रेस में)	150.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00
शंकर सर्वस्व	120.00	बाल मनुस्मृति	12.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	ओंकार उपासना	12.00
नारी सर्वस्व	60.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	महिला गीतांजलि	10.00
शुद्ध हनुमच्चरित (प्रेस में)	40.00	क्या भूत होते हैं	10.00
विदुर नीति	40.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
चाणक्य नीति	40.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
वेद प्रभा	30.00	सच्चे गुच्छे	8.00
शान्ति कथा	30.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
नित्य कर्म विधि	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग (प्रेस में)	25.00	गायत्री गौरव	5.00
बाल सत्यार्थ प्रकाश	30.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
यज्ञमय जीवन	30.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
दो बहिनों की बातें	25.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
दो मित्रों की बातें	25.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
मील का पत्थर	20.00	जीजा साले की बातें	5.00
भ्रांति दर्शन	20.00	भागवत के नमकीन चुटकुले	5.00
दयानन्द और विवेकानन्द	15.00	आदर्श पत्नी	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2016 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

... .

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबाइल- 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्र... सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिंग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित